वर्ष ४२] * * * [अङ्क १०

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

संस्करण १,५०,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर कार्तिक २०२५, अक्टूबर १९६८

चित्र-सूची

वार्षिक मूल्य भारतमें ९.०० विदेशमें १३.३५ (१५ शिलिंग) } जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते ॥ { साधारण प्रति भारतमें ५० पै० विदेशमें ८० पै० (१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री

मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

वृन्दावनवीथियोंमें विचरते व्रजेन्द्रनन्दन

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
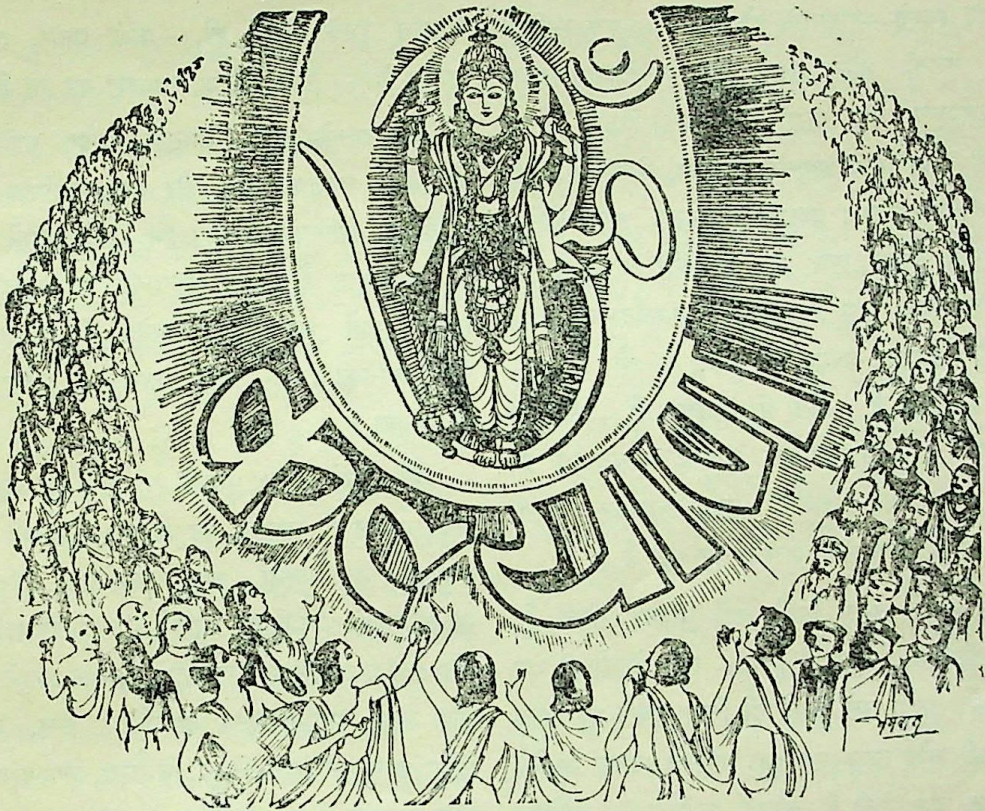
त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥

वर्ष ४२ } गोरखपुर, सौर कार्तिक २०२५, अक्टूबर १९६८ { संख्या १०
पूर्ण संख्या ५०३

वृन्दावन-वीथियोंमें विचरते व्रजेन्द्रनन्दन

नवपल्लव सुगन्ध-सुमनोंसे शोभित वृक्षलता सम्पन्न ।
होता जहाँ, वायु शीतल सुरभित सुमन्दसे सुख उत्पन्न ॥
यमुनापुलिन सुवासित सुन्दर रहता सदा एक शुभ ओर ।
वृन्दाविपिन-वीथियोंमें उन विचर रहे व्रजराजकिशोर ॥

याद रक्खो—भगवान्‌के दो रूप हैं—एक समुद्रके गम्भीर तलकी भाँति सर्वथा प्रशान्त क्रियागुणहीन, लीलातरङ्गशून्य और दूसरा है समुद्रकी विविध विचित्र तरङ्गोंकी भाँति नित्य अत्यन्त उच्छलित, नित्यनर्त्तनशील, नित्य लीलातरङ्गमय। प्रशान्त समुद्रतल तथा विविध तरङ्गस्वरूप समुद्र एक ही है और एकहीके ये दोनों रूप नित्य सत्य हैं। दोनों सदा-सर्वदा एक साथ रहते हैं। प्रशान्त-स्वरूप भी लीला है और अशान्त-स्वरूप भी लीला है। लीला ही लीलामय हैं। लीलामय ही लीला हैं। एकमें रस और आनन्द स्वरूपनिष्ठ है, दूसरेमें रस और आनन्द उछल-उछलकर अपनी मधुरताका प्रदर्शन और वितरण कर रहा है।

याद रक्खो—तरङ्ग कभी बड़ी भीषण होती है, कभी बड़ी कोमल होती है। कभी उसे देखते ही भय लगता है, कभी उसे देखते ही चित्त हर्षसे भर जाता है। कभी कोई तरङ्ग सब कुछ बहा ले जाकर अपनेमें आत्मसात् कर लेती है, तटवर्ती पदार्थमात्रका अस्तित्व मिटा देती है। कभी कोई तरङ्ग अपने कोमल शीतल सलिल संदोह-स्पर्शसे केवल अनिर्वचनीय अनुपमेय सुख ही नहीं देती वरं समुद्रमें छिपे रत्नोंको बाहर फेंक जाती है। पर इन दोनों ही स्थितियोंमें लीलायमान है वह समुद्र ही, जो इस समय भी अपने तलसे सर्वथा प्रशान्त है।

याद रक्खो—ये तरङ्गें ही परमात्मा-समुद्रकी विविध विचित्र अनन्त निज शक्तियाँ हैं—जिनका महामाया, योगमाया, आत्ममाया, गुणमयी माया, मूलप्रकृति, द्विविध जीवभूता और अष्टधा-प्रकृति, दो प्रकारके पुरुष, प्रकृति, प्रकृतिविकृति आदि हैं। इन शक्तियोंके द्वारा—भगवान् इनके रूपमें ही,—कभी प्रकट, कभी गुप्त अनन्त विचित्र लीलाओंमें आत्मप्रकाश कर रहे हैं।

याद रक्खो—जगत्, जगत्‌के प्रत्येक प्राणि-पदार्थ-परिस्थिति, जगत्‌का उदय, और जगत्‌का विलय—सभी भगवान्‌का आत्मप्रकाश है। इन सबके रूपमें भगवान् ही अभिव्यक्त हैं। यह समझकर सदा-सर्वदा—अपने सहित सबमें भगवान्‌को देखनेकी—छिपे भगवान्‌को प्रकट करनेकी इच्छा—चेष्टा करते रहो। यह प्रयास ही साधना है।

याद रक्खो—जिस पुरुषके जीवनमें इस साधनाका अङ्कुर उत्पन्न हो गया है, वह क्रमशः संसारकी ज्वाला-यन्त्रणा, पीडा-यातना, अशान्ति-असंतोष, ममता-मोह, मद-अभिमान, भय-विषाद आदिसे छूटकर प्रत्येक स्थितिमें और प्रत्येक अवसरपर भगवान्‌का अनुभव करने लगेगा और उसमें द्वन्द्वभावशून्य आत्यन्तिक सुख, शान्ति, संतोष, ज्ञान, भगवद्भाव, विनय, निर्भयता, नित्य परमानन्द, नित्य आत्मरति, नित्य जगत्-विस्मृति आदि सद्भाव-सद्गुणोंका उदय तथा उत्तरोत्तर संवर्धन होता रहेगा।

याद रक्खो—ऐसा साधक पुरुष जीवनके परम ध्येय—जो वस्तुतः उसे नित्य प्राप्त ही है—भगवान्‌को प्राप्तकर सफलजीवन हो जायगा। जगत्‌के समस्त प्राणियोंके कल्याणके लिये सहज ही उसके अंदरसे ऐसे दिव्य अमृत-ज्योति विद्युत्कण निकलकर जगत्‌में प्रसरित होने लगेंगे, जिनके स्पर्शमात्रसे विष—तमोमय प्रपञ्चसे छूटकर जगत्‌के जीव भगवान्‌के अमृतमय दिव्य ज्योतिर्मय-स्वरूपभूत परमधामको प्राप्त करनेके अधिकारी बनने लगेंगे। यों तरनतारण बन जायगा वह भगवान्‌में स्थित साधक।

'शिव'

प्रीति ही जीवन है

[एक महात्माका प्रसाद]

(प्रेषक—'श्रीमाधव')

समस्त जीवनमें तत्त्वरूपसे प्रीति ही विद्यमान है। प्रीतिकी अभिव्यक्तिमें ही प्राणीका पुरुषार्थ, प्रीतिके सदुपयोगमें ही नित-नव-रस और प्रीतिकी अनन्ततामें ही जीवनकी पूर्णता विद्यमान है।

किसी-न-किसीकी प्रीतिका समूह ही व्यक्तिका अस्तित्व है। पर जब उस प्रीतिका उपयोग प्राणी अपने सुखके लिये करने लगता है, तब उसका नाम लोभ, मोह आदि हो जाता है। लोभ और मोहका ही दूसरा नाम प्रमादयुक्त सीमित प्रीति है। यह नियम है कि जिसमें जिसकी प्रीति होती है, वह उसीमें उसको आबद्ध कर देती है। जैसे वस्तुओंकी प्रीति वस्तुओंमें और देहकी प्रीति देहमें व्यक्तिको आबद्ध कर देती है। जितने बन्धन हैं, उनमें सत्ता रूपसे प्रीति ही विद्यमान है। वस्तु, अवस्था एवं व्यक्तियोंकी प्रियता हमें अनन्तकी प्रीति होकर अनन्तसे अभिन्न होने नहीं देती। जिस प्रकार सूर्यके तापसे उत्पन्न हुए बादल सूर्यको ही ढक-सा लेते हैं, उसी प्रकार नित्य ज्ञानके प्रकाशसे प्रकाशित बुद्धिके ज्ञानकी आसक्ति और इन्द्रिय-ज्ञानका सद्भाव व्यक्तिको नित्य ज्ञानसे विमुख-सा कर देते हैं। रागरूपी बादल ही अनुरागरूपी सूर्यको ढकनेका प्रयास करते हैं।

यद्यपि सूर्यके तापसे उत्पन्न हुए बादल सूर्यको ढकनेका प्रयास करते हैं, परंतु उन बादलोंको छिन्न-भिन्न करनेकी सामर्थ्य भी सूर्यमें ही है। उसी प्रकार रागरूपी बादलोंका विनाश करनेकी सामर्थ्य अनुराग-रूपी सूर्यमें ही है। प्रीतिको आच्छादित करनेमें एक-मात्र हेतु वस्तु और व्यक्ति आदिके द्वारा सुखभोगकी रुचि है, जो वास्तवमें अविवेकसिद्ध है। अतः ज्यों-ज्यों सुखलोलुपता मिटती जाती है, त्यों-त्यों प्रीति स्वतः उद्भासित होने लगती है। अतः प्रीतिको जाग्रत् करनेके लिये हमें सुखलोलुपताका अन्त करना परमावश्यक है। सुखलोलुपताका अन्त होते ही भोगवासनाओंका अन्त हो जाता है; भोगवासनाओंके अन्तमें ही नित्ययोग निहित है और वही अचाह पद प्राप्त करानेमें समर्थ है। चाहरहित होते ही भिन्नता मिट जाती है और अभिन्नता आ जाती है, जो दिव्य चिन्मय प्रीति प्रदान करनेमें समर्थ है। अभिन्नता भेद तथा दूरीको खा लेती है, जिससे प्रीतिकी अभिव्यक्ति स्वतः हो जाती है।

प्रीतिकी अभिव्यक्ति अचाह होनेमें निहित है। सर्वस्व दे डालनेमें ही प्रीतिका उपयोग है, अन्य किसीमें नहीं। प्रीति स्वरूपसे चिन्मय तथा अनन्त है। इसी कारण प्रीतिके उपयोगमें नित-नूतन रस है। प्रीतिजनित नित-नवरसका पात्र वही हो सकता है, जिसे प्रीतिसे भिन्न अन्य किसी वस्तु आदिकी अपेक्षा न हो। अर्थात् जो कामरहित हो—कारण कि कामनायुक्त प्राणी तो अपनी इच्छित वस्तुकी ही अपेक्षा रखता है, प्रीतिकी नहीं। अतः यह निर्विवाद सिद्ध है कि प्रीति उस अनन्तमें ही विलीन होती है, जो कामसे अतीत है।

प्रीतिका आरम्भ होता है, पर अन्त नहीं; क्योंकि न उसकी निवृत्ति होती है और न पूर्ति। प्रीति तो नित्य भी है और अनन्त भी। इसी कारण प्रीतिकी प्राप्ति होती है, पूर्ति और निवृत्ति नहीं। विकारोंकी निवृत्तिका परिणाम स्वाधीनता है, नित्य-वस्तुकी जिज्ञासाकी पूर्तिका परिणाम जीवन है और प्रीतिकी प्राप्तिमें है अगाध, अनन्त रस। अतः प्रीति निवृत्ति और पूर्तिसे विलक्षण तत्त्व है। उसकी अनन्ततामें ही जीवनकी पूर्णता है।

॥ ॐ आनन्द आनन्द आनन्द ॥

ब्रह्मलीन परमपूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतमय उपदेश

(उनके विभिन्न सज्जनोंको लिखे पत्रोंसे)

(१)

ध्यानकी स्थिति एक-सी रहने तथा साक्षात् अमृत-रूप भासनेके सम्बन्धमें पूछा तथा वैराग्यकी वृद्धि हो ऐसे वचन लिखनेके लिये अनुरोध किया सो ठीक। वैराग्य होनेके बाद सर्वव्यापीमें स्थिति होकर जो ध्यान होता है, उसमें साक्षात् अमृतरूप ही भासता है और निरन्तर वैराग्य रहनेपर निरन्तर ऐसा ध्यान रहना भी बहुत ही सुलभ है। जबतक ऐसा वैराग्य न हो, तबतक निरन्तर नाम-जपका अभ्यास होनेपर भी ध्यानमें स्थिति हो सकती है। नाम-जपके अभ्यासकी सत्संगसे तथा नाम-जपके अभ्याससे वृद्धि हो सकती है।

भगवान्‌के भजनके समान कुछ भी नहीं है। भजन ही जीवन है। इस प्रकार विश्वास करके साधन-में तेजी लानी चाहिये। साधन तेज हो जानेपर भगवान्‌के चिन्तनके समान और कुछ भी नहीं भासता। अतएव भगवान्‌के गुणानुवाद तथा उनके प्रभावकी एवं उनके विशुद्ध प्रेमकी बातें करनेमें और ध्यानसहित नाम-जपका निरन्तर अभ्यास करनेमें समय लगानेकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये। हर समय प्रसन्न-चित्तसे चिन्ताशून्य होकर नाम-जप करना चाहिये। निष्कामभावसे भी चित्त बहुत ही प्रसन्न रह सकता है। गीता अध्याय २ श्लोक ७१ के अनुसार भाव धारण करनेसे बहुत शान्ति मिल सकती है। उस शान्तिमें ऐसा निमग्न हो जाना चाहिये कि अपने शरीरका भी ज्ञान न रहे। कहीं ज्ञान हो तो शरीरसे पृथक् शान्तिस्वरूपमें स्थित रहते हुए शरीरसे ध्यान तथा नाम-जप होता दिखायी दे। स्वयं साक्षी बना रहे।

सर्वव्यापीमें जो अहंभाव है, वह भी शान्तस्वरूपमें शान्त होकर अन्तमें एक शान्तस्वरूप ही रह जाता है। संसार सब असत् ही है, संसारका वैभव सब स्वप्नवत् है, फिर संसारसे कोई चाहे कुछ भी अपना मतलब सिद्ध कर ले। आपको कौन-सी आपत्ति है?

ऐसा कौन-सा असाध्य कार्य है जो आपके शरीरसे नहीं बनता? ऊपर लिखे-अनुसार भाव समझ लेनेपर समस्त सत्त्वगुण सहज ही सध सकते हैं। सत्-चित्-आनन्दघनके रहते हुए संसारके मिथ्या भोगोंमें रमना तो पशुके सदृश है। ऐसा जानकर इस संसारके मिथ्या आरामका त्याग करके उस परम आनन्दमें ही रमना चाहिये। मिथ्या भोगोंमें तो मूर्ख ही रमता है। जबतक बालक नहीं समझता है, तभीतक वह मिश्री छोड़कर मिट्टी खाता है। जब मिश्रीका स्वाद आने लगता है, तब मिट्टी नहीं खाता।········

(२)

× × ×

समय बीता जा रहा है। जो कुछ करना हो, जल्दी कर लेना चाहिये। आपलोगोंका संग, ध्यान तथा भजन कैसा चल रहा है? ऐसा अवसर फिर मिलना कठिन है। आपलोग अपना समय किस प्रकार बिता रहे हैं? सत्संग और परमेश्वरके ध्यान-भजनके बिना जितना समय जाता है, सब धूलमें जा रहा है। आप संसारमें किसलिये आये हैं? जिस कामके लिये आये हैं, वह काम जल्दी कर लेना चाहिये। समय तो बीत ही रहा है। इसे इस प्रकार-से बिताना चाहिये जिससे आगे चलकर पछताना न पड़े। हर समय भगवान्‌के नामका अर्थसहित स्मरण रहे, वही उपाय करना चाहिये। संसार सब मिथ्या

है । एक श्रीनारायणके बिना आपका कोई भी नहीं है । शरीर भी आपका नहीं है । ऐसा जानकर जल्दी चेतना चाहिये । इस समय समझ जायँ तो बहुत आनन्द है । यदि भगवान्‌की प्राप्ति न हुई तो पीछे बहुत हानि है । ऐसा समझकर आपको मोह-निन्द्रासे शीघ्र जाग जाना चाहिये । आप कौन हैं ? किस कामसे आये थे और क्या कर रहे हैं ? हर समय इस-पर विचार करना चाहिये । एक भगवान्‌के सिवा मिथ्या संसारका चिन्तन एक पलके लिये भी आपके द्वारा क्या होता है ?

(३)

श्रीसच्चिदानन्दघन परमात्माके सिवा और कुछ है ही नहीं, इस प्रकारकी गाढ़ स्थिति निरन्तर रहती होगी । न रहती हो तो रहनेके लिये साधनकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये । श्रीसच्चिदानन्दके अतिरिक्त यदि कुछ भासता हो, तो उसका त्याग कर देना चाहिये—उसे भूल जाना चाहिये—उसे स्वप्नवत् या मनोराज्यकी तरह अथवा आकाशमें दीखनेवाले तिरवरोंकी तरह समझकर ।

× × ×

(४)

आपने लिखा कि 'सेवाके लिये' सो उसकी (भगवान्‌की) सेवा करनेका ध्यान तो है परंतु वे सेवाके योग्य बना लें, तब हर किसीसे सेवा बन सकती है । सो यह ठीक है परंतु जिसकी बननेकी तथा निष्काम सेवा करनेकी इच्छा हो उसको तो वे योग्य बना लेते हैं । लेकिन जिसकी इच्छा ही न हो, उसके लिये कोई उपाय नहीं । यदि यह कहें कि इच्छा भी वे ही करवा लें, सो ऐसा होता कि सभी काम वे ही कर लें तो आजसे पहले ही सब जीवोंका कल्याण होनेमें कोई बाधा नहीं आती । सब काम वही करें—यह मान लें तो भी सब काम करनेका उन्हें भार तो देना चाहिये और फिर भगवान् जो कुछ भी करें उसमें प्रसन्न होना चाहिये । उनके किये हुएकी हम स्वीकृति भी न दें तो वे किस प्रकार करें । कुछ तो अपना कर्तव्य भी है । और नहीं तो (कम-से-कम) उनकी निष्काम प्रेमभावसे शरणागति तो होनी ही चाहिये । फिर आगेका सारा काम वे कर सकते हैं । यह कहें कि शरणागति भी वे जबरदस्ती करा लें तो यह ठीक नहीं, बिना इच्छाके वे शरणमें नहीं ले सकते । इतनी ही आपत्ति है ।

× × ×

प्रेम—पूर्णसमर्पण

देह-प्राण-मन-वस्तु-परिस्थिति-ममता-राग-कामना-मोह ।
सभी समर्पण हुए सहज, है वहीं प्रेम शुचि सुख-संदोह ॥
होता नहीं अनन्त प्रेम यह अन्तवानमें किसी प्रकार ।
एक अनन्त पूर्ण प्रभुमें ही होता, बढ़ता नित्य अपार ॥
कभी न होता पूर्ण प्रेम यह, कभी न आता इसका अन्त ।
नित नव शुचि रस बढ़ता, बढ़ता नित नव रसमाधुर्य अनन्त ॥
निज-सुख-वाञ्छा-लेश न रहता, रहता स्मृतिमें भी न विकार ।
उमड़ा रहता एक नित्य सर्वत्र प्रेम-रस-पारावार ॥
मिट जाते सब द्वन्द्व, शेष रह जाते केवल प्रियतम एक ।
प्रेम-सुधा-रस-आस्वादन-रत आत्मसात् कर सभी अनेक ॥

चेतावनी--देशके विचारको ! सावधान !

(राष्ट्रसंत श्रीतुकड़ोजी महाराजके द्वारा संकेत)

'सोचिय नृप जो नीति बिहीना।'

मित्रो ! जिस देशका शासक धर्महीन हो, उस देशकी प्रजा धर्मवान् रहे—यह बात मेरे दिमागमें बिल्कुल ही नहीं आती। जिस देशका शासक अपने चरित्र-नियमोंसे गिर जाता है, उस देशकी प्रजा चरित्रवान् हो—यह बात मेरे मन जँचती ही नहीं।

जिस देशका शासन अपनी सेना बढ़ाने, गुप्तचरोंका विस्तार करने और शस्त्रादिके निर्माणमें असमर्थ हो, उस देशमें शत्रु नहीं घुसेगा—यह सम्भव ही नहीं है। जिस देशका शासन उसके खाद्यान्नकी स्थिति सुधारनेमें दिलचस्पी लेकर उसे स्वावलम्बी नहीं बनायेगा, उस देशको किसीका नमकहराम बननेके सिवा और चारा ही नहीं है और इसीसे वह अपना तेज खो देता है तथा देशमें भिखारीपनको बढ़ाता है। जिस देशकी शिक्षण-संस्थाएँ या संस्कारी-संस्थाएँ धर्मवान् (चरित्रवान्) पुरुषोंके द्वारा संचालित नहीं होतीं, उस देशकी प्रजा सुपात्र और सुसंस्कारशील हो, यह बिल्कुल ही असम्भव बात है।

जिस देशका धर्म त्यागी, तपस्वी, जातिपक्षहीन, शुद्ध सात्त्विक, आध्यात्मिक वृत्तिसे भरे सज्जनोंके हाथों नहीं चलेगा, वह देश नास्तिक, सत्‌कर्महीन, भ्रष्टाचारी, विषयान्ध और चोर-डाकू-स्वरूप बन जायगा। इसमें मुझे बिल्कुल शंका नहीं है।

जिस देशका नवयुवक अपने देशकी माताओं, बहनों एवं अन्य देवियोंको श्रद्धा तथा उच्च भावनासे नहीं देखेगा, वह देशकी प्रजाको गायों, भैंसों और भेड़ोंके सदृश (पशु) बनाये बिना नहीं छोड़ेगा।

जिस देशमें मदिराको खुले-आम मान्यता दी जायगी, उस देशकी मनुष्यता और मान-प्रतिष्ठाका कहीं पता नहीं रहेगा। उसकी अपनी वैसी ही प्रतिष्ठा होगी, जैसी समाजमें नशेमें चूर रहनेवालोंकी होती है। जिस देशके आयात-निर्यातमें भ्रष्टाचारका बोल-बाला होगा, उस देशके नाशमें कोई संदेह है, ऐसा मुझे नहीं लगता।

जिस देशकी प्रजा एकतासे रहना नहीं जानती, उस देशमें शत्रुका ही राज्य होता है, भले ही वह जाहिरा तौरपर शासक न बने। जिस देशके लोग नौकरीके लिये तड़पते हैं और कष्टका मुकाबला नहीं करते, वह देश एक दिन आपसी कलहसे नष्ट होगा; क्योंकि उस देशके निवासियोंको एक दूसरेकी अच्छाई सहन ही न होगी।

मित्रो ! जिस देशका वकील, डाक्टर, अफसर, अध्यापक, व्यापारी और साहित्यिक सदा पैसोंपर ही दृष्टि रखकर चलता है, उस देशमें शान्ति-समृद्धि, स्वास्थ्य, चरित्र कभी अच्छा नहीं रह सकता। जिस देशका प्रचारक, सेवक उपभोगी बनता या बनना चाहता हो, उस देशका भविष्य अंधकार तथा धोखेमें है—ऐसा निश्चित मानना चाहिये और जिस देशका न्यायाधीश पैसे खाता हो, उस देशमें न्याय तथा सुधारकी तो आशा ही नहीं की जा सकती। ऐसा मेरा स्पष्ट मत है।

जिस देशका किसान अपनी खेतीको भगवान् नहीं मानता और अनन्यतासे खेतीकी सेवा नहीं करता, वह देशको भूखों मारेगा, इसमें कोई संदेह नहीं। जिस देशके मजदूर केवल अपनी ही भलाईपर भूले रहते हैं, देशको भूल जाते हैं, वह देश एक दिन 'डिक्टेटर' के हाथोंमें जायगा; क्योंकि जो मजदूर आज मालिकोंसे लड़ते हैं, वे ही कल अपने साथियोंसे लड़कर

अपना अकल्याण करेंगे, इसमें मुझे शंका नहीं है। जो राज्य अपने दायरेकी—अपनी सीमाकी रक्षा नहीं करेगा, वह दुनियाके बाजारमें बेचा जायगा—इसमें मुझे संदेह नहीं होता।

जिस देशके धर्मका या दानका पैसा गरीब जनताकी प्रगति या धर्मसंस्कारोंके प्रचारमें न लगकर केवल महंतो, मण्डलेश्वरों या साधुओंके मठ-मन्दिरोंमें उनकी सुविधा-सेवामें ही व्यय होता है, उस देशके ऐसे धर्मका नाश तीव्रतासे होगा, इसमें भी मुझे कोई संदेह नहीं दीखता।

जिस देशके बालकोंपर देशके नेता, शासक, साधु, पण्डित आदि देख-रेख नहीं रखते, उस देशके लड़के बंदरके समान भोगी, रोगी, लुटेरे एवं देशनाशक ही होते हैं—यह मानी हुई बात है। जिस देशके पंथीय, सम्प्रदायी तथा मतवादी लोग देशकी प्रगतिक ओर ध्यान देकर—सच्चे संयमपरायण होकर एकता नहीं करते, उस देशकी साधु-संस्थाओंमें भ्रष्टाचार, व्यभिचार, अनाचार घुसे बिना नहीं रह सकते और जिस देशकी साधु-संस्थाएँ भ्रष्ट हो जाती हैं, उस देशको तो भगवान् ही बचायें।

मेरे मित्रो ! मैंने प्रायः ये सभी बातें केवल इसीलिये लिखी हैं कि लोग बिगड़ी चीजको देखकर हैरान तो होते हैं पर उसके मूल कारणका पता नहीं लगाते। 'पानी क्यों नहीं बरसता ?' यह चिन्ता तो करते हैं किंतु हमारी नीति भी कितनी भ्रष्ट हो गयी है—इसका कोई पता ही नहीं लगाता। बस, इसी बातपर सभी बातें लेनी चाहिये। संसारके कण-कणका सम्बन्ध हर चीजसे जुड़ा हुआ है, इसे नहीं भूलना चाहिये। जब एक तारामण्डल विकृत होता है, तब सारे संसारकी गतिविधिमें अन्तर आ जाता है, इसका अनुभव इस देशके ज्योतिषशास्त्र या खगोलशास्त्रमें निहित है। इसे कदापि नहीं भूलना चाहिये। केवल बात है श्रद्धा रखने या न रखनेकी।

मित्रो ! मैं तो यह निश्चित रूपसे कह सकता हूँ कि देशके कालमान बिगड़नेका दायित्व गरीब जनतापर नहीं है, यह है उन चुने-माने नेताओंपर और हमें उन सबको दोषी इसलिये मानना चाहिये कि उनके जीवनसे ही तो जनताका निर्वाह होता है। मुझसे कोई पूछे कि 'इन सब बातोंको ठीक करनेके लिये क्या करना चाहिये ?' तो मैं खुले-आम यह कहूँगा कि आन्दोलन करके न्याय प्राप्त करना चाहिये, या तो मर जाना चाहिये। साधुओंमें ही ऐसे क्रान्तिकारी साधु पैदा होने चाहिये जो उनका धन उनके पुत्र-पौत्रोंको नहीं, किंतु योग्य दिशासे ही धर्मके काममें लगा दें। हर बातपर जनता जाग्रत् रहे और भलाई सोचे। किसीकी आसक्तिसे भ्रष्टाचारियों या गुण्डोंका हित न सोचे। जब सोचे तब अपने देशकी, संस्कृतिकी भलाई ही सोचे। तभी हमलोग सुखकी साँस ले सकेंगे। अन्यथा अब या तो किसीके हवाले होना होगा या फिर अपने ही हाथों इस देशको बरबाद करना पड़ेगा,—ऐसा मुझे लगता है।

मैं यह भी साफ कहना चाहता हूँ कि हम किसी भी राजनीतिक पक्षका द्वेष नहीं करेंगे, किंतु पक्षान्धताके मारे देशमें अन्याय हो, यह सहन करना भी कायरोंका ही काम है। वे ऊर्ध्वगामी या प्रगतिपन्थी नहीं हो सकते। क्या आजका जमाना यह कार्य करेगा ? अरे भाई ! नहीं करेगा तो मरेगा। ऐसी मुर्दा शान्ति किस कामकी, जिसमें तेज, ओज और सत्य न हो ?

मैं 'लोकशाही'का पूर्ण साथी हूँ, परंतु वह लोकशाही किसी पक्ष, पंथ, सम्प्रदाय अथवा जातीयता या धर्मान्धतासे निकली हुई न हो। उसे शुद्ध विचारवान् तथा मानवतावादी ही होना चाहिये। उसमें अन्यायके

प्रति अप्रतिकार करनेकी वृत्ति या दब्बूपन भी न हो। हम उस लोकशाहीको बिल्कुल नहीं मानते, जो आजके 'गधेघाट'से या 'बंदरकी सर्कस'के शिक्षणसे निकली हो, जो अपने बापको बाप न कहे और माँको भी माँ न समझे, बल्कि वह दुनियाके उन राष्ट्रीय पुरुषोंके विचारोंसे निकली हुई हो जो गरीब जनताका दर्द समझ सकते हैं।

मित्रो! मैं तो गुणग्राहक हूँ। गुणचिन्तक हूँ। गुणपर मेरी बड़ी श्रद्धा है, चाहे वह ब्राह्मणमें हो या हरिजनमें। किसानमें हो या भंगीमें। उसे तो पूज्य माना ही जाना चाहिये। तभी देश ठीक हो सकता है। गुणहीनतासे इस देशका कितना ह्रास हो गया है—मैं अनुभवसे जानता हूँ। कोई भी जगह धर्म-संस्कार देनेकी नहीं है। जो जगह है, वह केवल अपने चुनावक्षेत्रोंको बनानेकी और अपने भोजनपात्रोंकी प्रतिष्ठा जमानेकी है। इससे देश बनेगा? या घर-घर कलहकी वृद्धि होगी? आप ही सोच सकते हैं।

इस देशकी वर्तमान राजनीतिने मनुष्य-मनुष्यमें कितनी फूट पैदा की? कितनी बेईमानीका निर्माण किया? इसे कौन नहीं जानता। विना राजनीतिके चलेगा भी नहीं—यह मैं भी मानता हूँ। परंतु ऐसी कुटिल और द्वेषमूलक, हाँजी—हाँजी करनेवाली, गुटबंदीपरक तथा क्षुद्र स्वार्थपर तुली हुई राजनीति तो देशके लिये अभिशाप सिद्ध हो चुकी है। ऐसी राजनीति मनुष्यको कितना नीचे गिराती है, इसकी घटाएँ तो अब चारों ओर फैल गयी हैं।

भाइयो! अब तो इस देशके गण्यमान्य तपस्वियों और हृदयवान् त्यागी पुरुषोंके लिये सोचनेका समय इतना समीप आ पहुँचा है कि यदि वे देर करेंगे तो शायद दुनिया युद्धके दरवाजेपर पहुँच जायगी। और फिर जैसे रणमें खड़ा घोड़ा स्थिर नहीं रहता या हवासे घिरी नैया शान्त नहीं रह सकती, वैसे ही मनुष्यका जीवन अशान्तिका शिकार बन जायगा। इसलिये जितना जल्दी हो सके, इस देशकी जनताको आध्यात्मिक स्तरपर जाग्रत् करके इस देशमें एकात्मताको कायम करना, जीवनशुद्धिके साथ देशमें शान्ति बनाये रखनेके लिये सहयोगी बनना—यह महान् पुण्य-कार्य है—ऐसा मैं मानता हूँ।

(बाम्बे हास्पिटल)
(२७।७।६८)

—तुकड्यादास

मानव दानव बन गया

प्राणिमात्रमें बस रहे एक मात्र भगवान।
नमन नित्य करना उचित, सेव्य उन्हें नित मान॥
सर्वभूतहितमें सदा लगें देह-मन-प्राण।
धन-सम्पत्ति-समृद्धि सब, मिले तभी कल्याण॥
मनमें भी आ जाय यदि प्राणी-अहित-विचार।
है भगवत्-अपराध वह, दूषित पापाचार॥
व्यक्ति-स्वार्थने खा लिया, प्राणि-जगत्का स्वार्थ।
मानव दानव बन गया, भूल गया परमार्थ॥

साधनामें बाधक रोग और ऋण

(लेखक—साधुवेषमें एक पथिक)

प्रत्येक मनुष्य जन्म लेकर वस्तु-व्यक्तिसे सम्बन्धित होकर कुछ-न-कुछ चाहता ही रहता है; इसीलिये विद्वज्जन उसे 'साधक' कहते हैं और मनुष्य साधनके द्वारा जो कुछ प्राप्त करना चाहता है, उसीको 'साध्य' कहते हैं। इस सिद्धान्तके अनुसार हम सभी मानव साधक हैं। जहाँतक हमें अभावकी प्रतीति होती है, वहाँतक हम उसकी पूर्णता चाहते हैं। हम अनेक प्रकारके ग्रन्थाध्ययन तथा श्रवणद्वारा अधिक-से-अधिक ज्ञान प्राप्त करते चले आ रहे हैं, पर वह ज्ञान सुलभ नहीं है जिससे पूर्णता प्राप्त होती है और अभाव-का ही अभाव हो जाता है। हम सङ्ग तथा सम्बन्धसे दुखी और अशान्त होकर शान्तिके लिये सम्बन्धियों तथा गृह आदि वस्तु अथवा सम्पत्तिका त्याग करते हैं, पर इससे वह त्याग पूर्ण नहीं होता, जिससे शाश्वत शान्ति सुलभ होती है। हम कभी-कभी दोषोंकी निवृत्तिके लिये व्रत और तपके द्वारा तन-मनको तपाते रहते हैं, पर वह तप नहीं हो पाता, जिससे दोष-निवृत्तिकी शक्ति सुलभ होती है। हम आसक्तियोंको मिटानेके लिये अधर्मका त्याग करते हुए धर्माचरणमें प्रवृत्त रहते हैं, पर वह धर्म नहीं सध पाता, जिससे पूर्ण विरक्ति होती है। हम संसारके प्रभावसे बचनेके लिये परमेश्वरके गुणोंका कीर्तन, नामोंका जप तथा चरित्रका पाठ और उनके विग्रहकी पूजा करते हुए देखनेवालोंकी दृष्टिमें भक्त बन रहे हैं, पर वह दिव्य भाव एवं प्रेम प्रायः सुलभ नहीं होता, जिससे परमेश्वर-की निरन्तर अभिन्नताका बोध करानेवाली भक्ति सुलभ होती है। हम सत्सङ्गकी महिमाको श्रवणकर संतों तथा आचार्योंद्वारा सत्कथा और प्रवचन वर्षोंसे सुनते आ रहे हैं, पर वह सत्सङ्ग सुलभ नहीं होता, जिससे असत्यके प्रभावसे मुक्ति मिलती है।

हम कुछ-न-कुछ बनते-बनाते रहते हैं, पर अभीतक वह नहीं हो पाया, जिससे परमात्माके यथार्थ प्रेमकी प्राप्ति होती है। प्रायः हम अनेक साधक साधनाके अभिमानी बने हुए हैं, साधन और साध्यका विवेक नहीं प्राप्त करते। साधनाके नामपर हम जो कुछ भी पूजा, पाठ, जप, ध्यान और आराधना आदि करते हैं, उससे संतोष तो होता है, पर नित्य प्राप्त सत्यकी अनुभूति प्रायः नहीं होती। स्वाध्यायके द्वारा पता चला कि विविध साधनोंद्वारा शान्ति, मुक्ति, भक्ति अथवा अभीष्ट सिद्धि इसलिये सुलभ नहीं होती है कि हम तन अथवा मनसे रोगी और ऋणी हैं। कोई भी मनुष्य जब स्थूल शरीरसे रोगी हो जाता है, तब किसी भी कार्यकी सिद्धिके लिये श्रम नहीं कर सकता; इसी तरह जब धन लेकर किसीका ऋणी हो जाता है, तब अपने संकल्पकी पूर्तिमें स्वतन्त्र नहीं रहता। कोई साधक जबतक मनसे रोगी रहता है, तबतक शुभ संकल्पकी पूर्तिके लिये दृढ़ नहीं रहता और जबतक मनद्वारा भोगी बने रहकर ऋणी रहता है, तबतक परहित अथवा सेवाके लिये स्वतन्त्र नहीं रहता। बाह्य जीवनमें दीखनेवाले रोग और ऋणकी अपेक्षा मानस-रोग तथा मानस-ऋण बहुत ही दुःसाध्य हैं।

बाह्य ऋण तथा रोग सांसारिक भोग-सुखमें बाधक रहा करते हैं, आन्तरिक रोग तथा ऋण पारमार्थिक साधनाकी सिद्धिमें बाधक बनते हैं। बाह्य रोग तथा ऋणका ज्ञान सर्वसाधारणको होता रहता है, पर मानसिक रोग और ऋणका परिचय बिरले ही विवेकी पुरुष प्राप्त कर पाते हैं। शारीरिक रोगोंका उपचार बाह्य वैद्यों—डाक्टरोंद्वारा होता है, मानस रोगोंका उपचार सद्गुरु वैद्यद्वारा होता है। बाह्य ऋणकी

निवृत्ति बाह्य भौतिक सम्पत्तिद्वारा होती है, पर मानसिक ऋणकी निवृत्ति—पूर्ति आन्तरिक दैवी सम्पत्तिद्वारा कर्तव्यपरायण बननेसे होती है ।

हमलोगोंका स्थूल शरीर अधिकतर आरम्भमें रोगरहित तथा ऋणरहित ही देखा जाता है, पर सूक्ष्म शरीर पहले जन्मोंसे ही रोगी और ऋणी चला आ रहा है । स्थूल शरीरके द्वारा बढ़े हुए रोग तथा ऋणको दूर करनेके लिये बाह्य वैद्य और धनी महाजनका आश्रय लेना होता है; मानस रोग तथा ऋणकी निवृत्तिके लिये संत-सद्गुरु और परम प्रभुकी अहैतुकी कृपाका आश्रय लेना होता है । देहके किसी अङ्गमें पीड़ा होने तथा अशक्ततासे बाह्य रोगका परिचय मिलता है, इसी तरह मानसिक अशान्ति और दुःख-शोक-संतापसे मनके रोगाक्रान्त होनेका पता चलता है । जिस तरह स्थूल देहमें अनेक रोग प्रचलित हैं, उसी तरह मानस देहमें भी काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ममता, ईर्ष्या, राग, द्वेष, भय, विषाद, तृष्णा और वासना आदि अनेक रोग मनोवैज्ञानिक जन जानते हैं ।

हमें बताया गया है कि समस्त रोग और ऋण अज्ञानकी भूमिकामें ही बढ़ते हैं । हमारे मानस क्षेत्रकी एक दिशा मोहरूपी महारोगसे घिरी है, दूसरी दिशा लोभ तथा तीसरी दिशा कामसे आक्रान्त है; तृष्णारूपी बुभुक्षामें कुछ भी भरते जायँ, उसका पेट कभी भरता ही नहीं है, भूख मिटती ही नहीं है । अहंगत महत्त्वाकाङ्क्षा तो असाध्य राजरोग बनकर जीवनको ही विषाक्त कर रही है । यह महत्त्वाकाङ्क्षा गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा साधु-संन्यासी, उदासी और वैरागी—सबको अशान्त, क्लान्त और भ्रान्त बना रही है । महत्त्वाकाङ्क्षासे केवल वही बचा होगा जो कुछ बनने या होनेकी कामना नहीं रखता । गृहस्थ जीवनमें हम सबसे बड़े धनवान्, विद्वान, रूपवान् तथा वैभवसम्पन्न उच्च पदाधिकारी होना चाहते हैं और बढ़ते-बढ़ते जब थक जाते हैं, विश्राम नहीं पाते हैं, तब सब कुछका त्यागकर संन्यासी अथवा सर्वोपरि तपस्वी, त्यागी, ज्ञानी, ध्यानी, धर्मोपदेशक, सुधारक, उद्धारक और गुरु बननेके लिये परस्पर होड़ लगानेमें अपने आपको प्रमादी और आलसी नहीं देखना चाहते । यह महत्त्वाकाङ्क्षारूपी चढ़े ज्वरका कुलक्षण है । महत्त्वाकाङ्क्षाका नशा इतना मादक है कि इसके कारण हम अनेक साधक स्वयंको ही खोये हुए हैं और अपने कर्तव्यको भूलकर अधिकार-भोगमें आसक्त रहकर रोगी और ऋणी बन रहे हैं ।

गुरु-विवेकद्वारा कोई भी साधक देख सकता है कि बाहरसे त्याग करनेपर भी यदि भीतर किसी वस्तु अथवा व्यक्तिमें राग बना है, बाहरसे धन छोड़ते हुए भी भीतर लोभ बना है, ऊपरसे विनम्रतापूर्ण वाक्योंका प्रयोग करनेपर भी भीतर अभिमान बना है तथा बाहरसे शीत-घाम सहते हुए भी अन्तरमें प्रतिकूल वाक्य सहनेकी क्षमता नहीं है, तब निस्संदेह अन्तः-करणमें रोग भरे पड़े हैं । यदि किसीकी स्मृति हमें व्यथित और दुखी बना देती है, तो हम उसके ऋणी हैं ।

'स्व' का 'पर' से आच्छादित हो जाना ही रोग-ग्रस्त होना है और 'पर' के सङ्गमें सुख मानना ऋणी होना है । जो 'स्व' में स्थित नहीं है, वह अस्वस्थ और परतन्त्र है । हम साधकोंको स्वतन्त्र होनेके लिये परापेक्षित सुखलोलुपताका त्याग करना ही होगा । इसके साथ ही मिली हुई वस्तु तथा व्यक्तिको अपना न मानकर सब कुछ प्रभुका ही जानकर, प्रभुके नाते सभी सम्बन्धित प्राणियोंको यथोचित प्यार, अधिकार और मान देकर सेवाभावसे सबको संतुष्ट रखना होगा, रोग और ऋणसे मुक्त होनेका यही व्यावहारिक साधन है । जितनी अधिक दृढ़तासे हम मिली हुई देह, शक्ति,

सम्पत्ति तथा मिले हुए परिवारको अपना मान रहे हैं, उतने ही मोह, लोभ, अभिमान, अहंकार तथा काम-क्रोधादि विकारोंके द्वारा रोगी बन गये हैं। इसी तरह जितना अधिक हमने दूसरोंसे प्यार लिया है, सम्मान लिया है, अधिकार प्राप्त किया है तथा किसीसे शक्ति-सम्पत्ति लेकर भोगी बने हैं, उतने ही ऋणी हो गये हैं। अब सेवा, त्याग और प्रेमके सहारे स्वस्थ और ऋणमुक्त हो सकते हैं।

रोगी होनेके कारण जो कुछ हमें करना चाहिये, उसे हम समयपर नहीं कर पाते तथा ऋणी रहनेके कारण जिस तरह हमें त्यागी, विरागी, तपस्वी, ध्याननिष्ठ तथा योगसिद्ध होना चाहिये, उस तरह नहीं हो पाते। हममेंसे कोई भी साधक जबतक देहासक्त, धनासक्त, परिवार, भोग-सुख, कर्म और विचारमें आसक्त रहेगा, तबतक प्रेम, त्याग तथा सेवाकी पूर्णताके लिये जो कुछ करना चाहिये, उसे पूर्ण नहीं कर सकेगा। किसी भी तरहकी आसक्ति दृढ़ मानसिक रोग है; किसी भी प्रकारका अधिकार-भोग साधकके लिये ऋणकी भूमिका है, जिसकी सीमामें हम अनेक साधक कर्तव्यविमुख बने रहते हैं। ऋणी रहनेतक जगत्से विरक्ति और रोगी रहनेतक प्रभुमें अनुरक्ति नहीं होती। ऋणसे मुक्त होनेके लिये स्वधर्ममें स्थित होना है और रोगरहित अथवा स्वस्थ होनेके लिये हमें पर-धर्मसे असंग रहना है। 'स्व'में ही होना स्वस्थ होना है। सत् परमात्माका नित्यसङ्ग ही स्वधर्म है; असत् अनित्यका सङ्ग ही परधर्म है, विधर्म है, विधर्मी परावलम्बी है, वह स्वस्थ नहीं हो सकता।

जो कुछ 'स्व'से भिन्न है, वह देहादि वस्तु परकी सीमामें है। जबतक हम साधक देहादि वस्तुओंके साथ मिलकर इन्हें अपनेमें रख लेते हैं, तब-तक हम परतन्त्र, पराधीन तथा परापेक्षी हैं। जबतक हम ऐसे हैं, तबतक स्वस्थ, शान्त, मुक्त तथा भक्त नहीं हो सकते। पराश्रयके कारण ही हम स्वधर्मसे विमुख हैं, परधर्मा-वलम्बी होकर हम परतन्त्र बन रहे हैं। 'स्व' से भिन्न ही अनित्य है, पर है, 'स्व'से अभिन्न ही सत्य है, सनातन है। 'स्व' के सत्यकी अनुभूतिके लिये हमें 'पर' से असङ्ग रहना होगा। जो कुछ 'पर' है, उसे देखते ही उससे दूरी तथा असंगता प्राप्त होती है। असंगतामें ही परधर्मसे मुक्ति मिल जाती है; इस तरहकी मुक्तिमें ही हम साधक स्वस्थ हो सकते हैं; जो स्वस्थ हैं, वे पूर्णमें हैं, वे ही अपूर्णसे कुछ नहीं चाहते। निष्काम होनेमें ही पूर्ण तृप्ति है।

जो कुछ हम देखते हैं, वह हम स्वयं नहीं हैं, वह तो हमारा दृश्य है; जो दृश्य है, वह सनातन शाश्वत सत्य नहीं हो सकता। जहाँतक दृश्य है, वहाँ तक विचार-तरङ्गें उठती रहती हैं। ये तरङ्गें ही हमें 'स्व' में प्रतिष्ठित परमात्माकी एकताका अनुभव नहीं करने देतीं। हम विचार-तरङ्गोंमें होकर उन्हींमें तन्मय बन जाते हैं; 'स्व'को भूल जाते हैं; यही अज्ञानजनित मूल रोग है; 'स्व' का अज्ञान ही रोगका मूल है। 'स्व' के ज्ञानमें ही रोगकी निवृत्ति है। इसी तरह अन्यके द्वारा इच्छित सुखका भोगी बनना ही ऋणी होना है और स्वयं निष्कामभावसे प्रेममें होकर जो कुछ लेते आ रहे थे, उसी सुखद-सुन्दर पवित्रको देते रहना ऋणसे मुक्त होना है।

ज्ञानमें रोगसे मुक्ति मिल जाती है और प्रेममें ऋणकी निवृत्ति हो जाती है। 'स्व' की अनुभूति ही ज्ञान है, 'स्व' में सत्य परमात्माकी अनुभूति ही प्रेम है। ज्ञान और प्रेममें अपने आपको देखना ही स्वस्थ और स्वतन्त्र होना है।

श्रीराधा-जन्म-महोत्सवकी प्राचीनता

(श्रीराधा-जन्माष्टमी-महोत्सवके उपलक्ष्यपर दिनमें हनुमानप्रसाद पोद्दारका भाषण)

दिशि दिशि रचयन्तीं संचरन्नेत्रलक्ष्मी-
विलसितखुरलीभिः खञ्जरीटस्य खेलाम् ।
हृदयमधुपमल्लीं बल्लवाधीशसूनो-
रखिलगुणगभीरां राधिकामर्चयामि ॥
हरि-पदनख-कोटीपृष्ठपर्यन्तसीमा-
तटमपि कलयन्तीं प्राणकोटेरभीष्टम् ।
प्रमुदितमदिराक्षीवृन्दवैदग्धिदीक्षा-
गुरुमतिगुरुकीर्तिं राधिकामर्चयामि ॥

भगवान्‌की नित्य ह्लादिनी स्वरूपाशक्ति भगवती श्रीराधाजीके माहात्म्य, उनकी नित्यलीला, उनके प्राकट्य-महोत्सव, व्रत, उनके लीलाचरित्रकी यथार्थता आदिके सम्बन्धमें अनुभवी महात्माओं, संतों, नित्य प्रेमराज्यमें प्रविष्ट भागवतों तथा विश्वासी भक्तोंके लिये कुछ भी कहनेकी आवश्यकता नहीं, वरं उनके सामने प्रमाण-युक्तियाँ उपस्थित करना उन्हें कष्ट पहुँचाना है । न उनके लिये ही कुछ कहना आवश्यक है जो विरोध तथा खण्डनकी दृष्टिसे ही कहते-सुनते, लिखते और सोचते हैं । यह तो उनके लिये है जो विश्वासी श्रद्धासम्पन्न तो हैं, पर तथ्य जानना चाहते हैं और वास्तवमें वे ही इससे लाभ उठावेंगे ।

यों निरपेक्ष बुद्धिसे समझनेके लिये पढ़ने-सुननेवाले जिज्ञासुजन भी पढ़ने-सुननेपर श्रीराधाजीके प्रति श्रद्धासम्पन्न होकर यथायोग्य न्यूनाधिक परम लाभके भागी हो सकते हैं ।

जैसे सच्चिदानन्दघन भगवान् श्रीकृष्ण नित्य हैं, समय-समयपर इस भूमण्डलमें उनका आविर्भाव-तिरोभाव हुआ करता है, इसी प्रकार सच्चिदानन्दमयी भगवती श्रीराधाजी भी नित्य हैं । वास्तवमें भगवान्‌की निजस्वरूपा-शक्ति होनेके कारण वे भगवान्‌से सर्वथा अभिन्न हैं और समय-समयपर लीलाके लिये आविर्भूत-तिरोभूत हुआ करती हैं । नारदपाञ्चरात्रमें कहा गया है—

यथा ब्रह्मस्वरूपश्च श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः ।
तथा ब्रह्मस्वरूपा च निर्लिप्ता प्रकृतेः परा ॥
आविर्भावस्तिरोभावस्तस्याः कालेन नारद ।
न कृत्रिमा च सा नित्या सत्यरूपा यथा हरिः ॥
(२ । ३ । ५१, ५४)

'जैसे श्रीकृष्ण ब्रह्मस्वरूप हैं तथा प्रकृतिसे पर हैं, वैसे ही श्रीराधाजी भी ब्रह्मस्वरूप, निर्लिप्त तथा प्रकृतिसे पर हैं । भगवान्‌की भाँति ही उनका समय-समयपर आविर्भाव-तिरोभाव हुआ करता है । वस्तुतः वे भी श्रीहरिके सदृश ही अकृत्रिम, नित्य और सत्यस्वरूप हैं ।'

व्रत-महोत्सव-महिमाका एक प्राचीन प्रसङ्ग

इसी प्रकार इनका आविर्भाव-महोत्सव तथा उसका महत्त्व भी प्राचीनतम तथा नित्य है । पद्मपुराण-ब्रह्मखण्डके सप्तम अध्यायमें श्रीनारद-ब्रह्माके संवादमें एक इतिहास मिलता है, उसमें नारदजीके पूछनेपर ब्रह्माजी राधा-जन्माष्टमी-व्रतके महान् माहात्म्यका वर्णन करते हुए एक प्राचीन प्रसंग सुनाते हैं । वे कहते हैं—

'वत्स नारद ! पहले सत्ययुगमें एक मृगनयनी, शुभाङ्गी, चारुहासिनी, अतिसुन्दरी लीलावती नामकी वाराङ्गना थी । उसने बहुत बड़े-बड़े कठोर पाप किये थे । एक दिन धनकी लालसासे वह अपने नगरसे निकलकर एक दूसरे नगरमें गयी । वहाँ उसने एक जगह बहुत लोगोंको एकत्र देखा । वे लोग एक सुन्दर देवालयमें राधाष्टमी-व्रतका उत्सव मना रहे थे । गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, वस्त्र तथा नाना प्रकारके फल आदिसे भक्तिपूर्वक श्रीराधाकी श्रेष्ठ मूर्तिकी पूजा कर रहे थे, कोई गा रहे थे, कोई नाच रहे थे, कोई उत्तम स्तव पाठ कर रहे थे । कोई बड़ी प्रसन्नतासे ताल, मृदङ्ग और वेणु बजा रहे थे । इस प्रकार उन लोगोंको महोत्सव-परायण देखकर वाराङ्गनाने कौतूहलपूर्वक उन लोगोंके पास जाकर पूछा—

'पुण्यात्मा जनो ! आप हर्षमें भरे यह क्या कर रहे हैं ? मैं विनयपूर्वक पूछ रही हूँ, कृपा करके बताइये ।' इसके उत्तरमें उन राधाव्रतियोंने कहा—

'भाद्रमासके शुक्लपक्षकी अष्टमीको दिनके समय श्रीराधाजीका वृषभानुके यहाँ यज्ञभूमिमें प्राकट्य हुआ था । हमलोग उसीका व्रत करके महोत्सव मना रहे हैं । इस व्रतसे मनुष्योंके बहुत बड़े-बड़े पापोंका तुरंत नाश हो जाता है ।' उनकी बात सुनकर वाराङ्गना लीलावतीने भी व्रत करनेका निश्चय करके व्रत किया । दैवयोगसे उसको सर्पने डँस

लिया, इससे उसकी मृत्यु हो गयी। उसने बड़े पाप किये थे, अतएव हाथोंमें पाश तथा मुद्गर लिये भयानक यमदूत आ गये और उसे डाँटने लगे। इसी बीच शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले विष्णुदूतोंने आकर चक्रसे यमपाशको काट दिया। वह वाराङ्गना सर्वथा पापमुक्त हो गयी और उसे वे विष्णुदूत विमानपर चढ़ाकर 'गोलोक' नामक मनोहर दिव्य विष्णुपुरमें ले गये।'

ब्रह्माजीने फिर कहा—'इस प्रकार पापोंका नाश करनेवाले और श्रीराधामाधवको अत्यन्त प्रिय राधाष्टमी-व्रतको जो लोग नहीं करते हैं, वे मूढ़बुद्धि हैं। उन स्त्री-पुरुषोंको यमलोकमें जाकर नरकोंमें गिरना पड़ता है और फिर पृथ्वीपर जन्म लेनेपर घोर दुःख भोगने पड़ते हैं।'

वास्तवमें श्रीराधाजी भगवान् श्रीकृष्णकी ही अभिन्न मूर्ति हैं। इनकी पूजा सदासे होती आयी है और होनी चाहिये। इस भाषणमें उनके स्वरूप, तत्त्व, माहात्म्य, महोत्सव तथा व्रत-विधिके सम्बन्धमें प्राचीन ग्रन्थोंके कुछ आंशिक उद्धरण मूलसहित और कुछका केवल हिंदी अनुवाद दिया जा रहा है। इनको पढ़कर भारतके जन-जनको चाहिये कि वह सर्वत्र श्रीराधा-जन्माष्टमी-व्रत करने तथा महोत्सव मनानेका सत्प्रयास करे। शुद्ध हृदयसे उत्साहपूर्वक स्वयं मनाये तथा लोगोंको प्रेरणा देकर मनवाये। इसमें उसका और जगत्के उन जीवोंका, जो इस व्रत-महोत्सवका सेवन करेंगे, कल्याण होगा, इसमें कोई भी संदेह नहीं है।

श्रीराधा-पूजाकी अनिवार्य आवश्यकता

श्रीमद्देवीभागवतमें श्रीनारायणने नारदजीके प्रति 'श्रीराधायै स्वाहा' इस षडक्षर राधामन्त्रकी अति प्राचीन परम्परा तथा विलक्षण महिमाके वर्णन-प्रसङ्गमें श्रीराधा-पूजाकी अनिवार्यता तथा परम कर्त्तव्यताका निरूपण करते हुए कहा है—

कृष्णार्चायां नाधिकारो यतो राधार्चनं विना ।
वैष्णवैः सकलैस्तस्मात् कर्त्तव्यं राधिकार्चनम् ॥
कृष्णप्राणाधिदेवी सा तदधीनो विभुर्यतः ।
रासेश्वरी तस्य नित्यं तया हीनो न तिष्ठति ॥
राध्नोति सकलान् कामांस्तस्माद् राधेति कीर्तिता ॥

(देवीभागवत ९ । ५० । १६–१८)

'श्रीराधाकी पूजा न की जाय तो मनुष्य श्रीकृष्णकी पूजाका अधिकार नहीं रखता। अतएव समस्त वैष्णवोंको चाहिये कि वे भगवती श्रीराधाकी अर्चना अवश्य करें। ये श्रीराधा भगवान् श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। इसलिये भगवान् इनके अधीन रहते हैं। ये भगवान्के रासकी नित्य अधीश्वरी हैं। इन श्रीराधाके बिना भगवान् श्रीकृष्ण क्षणभर भी नहीं ठहर सकते। ये सम्पूर्ण कामनाओंका राधन (साधन) करती हैं, इसी कारण इन देवीका नाम श्री 'राधा' कहा गया है। (इनकी पूजा अनिवार्य है)।''

इन श्रीराधाजीका प्राकट्य भाद्रपद-शुक्लपक्षकी अष्टमीको मध्याह्नके समय श्रीवृषभानुपुरी (बरसाना) या उनके ननिहाल रावलग्राममें हुआ था। कुछ महानुभाव प्रातःकाल प्राकट्य हुआ मानते हैं। सम्भव है, कल्पभेदसे उनकी मान्यता सत्य हो; पर प्राचीन पुराणोंमें मध्याह्नका ही उल्लेख मिलता है। नीचेके विवरणसे इसे आप जान सकेंगे।

पद्मपुराण, उत्तरखण्ड अध्याय १६२-१६३ में देवर्षि नारद और भगवान् सदाशिवका संवाद है—

श्रीराधाका प्राकट्य और स्थान-महिमा

भाद्रपद महीनेमें कृष्णपक्षमें जब श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी आती है, उसके बाद शुक्लपक्षकी अष्टमीको हरिप्रिया श्रीराधिकाजीका जन्म हुआ। वृषभानुपुरी नामकी एक सब रत्नोंसे भरी सुन्दर नगरी है, जहाँ सुवर्ण और मणि-माणिक्यसे सुसज्जित विचित्र रंगके भवन और प्राङ्गण हैं। नाना प्रकारकी ध्वजा-पताका आदिसे विचित्र दीखनेवाली, चित्रोंसे सुशोभित वह नगरी अणिमा-महिमा आदि आठों प्रकारकी सिद्धियोंके द्वारा प्राप्त होनेवाले सुख और ऐश्वर्यसे परिपूर्ण तथा परम मनोहर है। वह चिदानन्दस्वरूप तथा चिदानन्द प्रदान करनेवाली है। उस नगरीमें आनन्द-केलि करनेवाली नारियाँ सदा निवास करती हैं। विचित्र वेष-भूषासे युक्त, विचित्र वस्त्र-परिधानसे शोभित, नाना प्रकारके वेषसे विचित्र अङ्गवाली तथा आमोद प्रदान करनेवाली स्त्रियाँ वहाँ रहती हैं। उसी नगरीमें सारे शुभ लक्षणोंसे युक्त, विनोदशीला, अतिसुन्दरी, जगत्के मनको मोहनेवाली, अतिगुह्यरूपा श्रीराधा नामकी देवी प्रकट हुई। हे मुनिवर! उनका स्वरूप अतिगुह्य है, वह मूढ़ लोगों और असंतोंके सामने कथनीय नहीं है।

श्रीराधाके स्वरूप-तत्त्व, रूप-गुण एवं सौन्दर्य-माधुर्यकी महिमा

नारदजी बोले—हे महाभाग ! मैं आपका दास हूँ, प्रणाम करके पूछता हूँ, बतलाइये । श्रीराधादेवी लक्ष्मी हैं या देवपत्नी हैं, महालक्ष्मी हैं या सरस्वती हैं ? क्या वे अन्तरङ्ग विद्या हैं या वैष्णवी प्रकृति हैं ? कहिये—वे वेदकन्या हैं, देवकन्या हैं अथवा मुनिकन्या हैं ?

सदाशिव बोले—हे मुनिवर ! अन्य किसी लक्ष्मीकी बात क्या कहें, कोटि-कोटि महालक्ष्मी उनके चरणकमलकी शोभाके सामने तुच्छ कही जाती हैं । हे नारदजी ! एक मुँहसे मैं अधिक क्या कहूँ ? मैं तो श्रीराधाके रूप, लावण्य और गुण आदिका वर्णन करनेमें अपनेको असमर्थ पाता हूँ । उनके रूप आदिकी महिमा कहनेमें भी लज्जित हो रहा हूँ । तीनों लोकोंमें कोई भी ऐसा समर्थ नहीं है जो उनके रूपादिका वर्णन करके पार पा सके । उनकी रूप-माधुरी जगत्‌को मोहनेवाले श्रीकृष्णको भी मोहित करनेवाली है । यदि अनन्त मुखसे चाहूँ तो भी उनका वर्णन करनेकी मुझमें क्षमता नहीं है । एक लाख लक्ष्मी जिसकी दासी हों, वह 'लाक्षकी' कहलाती हैं, इस प्रकारकी एक लाख लाक्षकी रमणियोंमें भी परम ऐश्वर्यमयी श्रीराधिकाजी हैं ।

नारदजी बोले—हे प्रभो ! श्रीराधिकाजीके जन्मका माहात्म्य सब प्रकारसे श्रेष्ठ है । हे भक्तवत्सल ! उसको मैं पूरा-पूरा सुनना चाहता हूँ ।

हे महाभाग ! सब व्रतोंमें श्रेष्ठ व्रत श्रीराधा-अष्टमीके विषयमें मुझको सुनाइये । श्रीराधाजीका ध्यान कैसे किया जाता है ? उनकी पूजा अथवा स्तुति किस प्रकार होती है, यह सब मुझसे कहिये । हे सदाशिव ! उनकी चर्या, पूजा-विधान तथा अर्चन-विशेष—सब कुछ मैं सुनना चाहता हूँ, कहिये; यन्त्र-मन्त्र, स्तुति-ध्यान, पूजाका स्थान, पूजाका विधान तथा तत्तत्सेवा-अर्चनाकी विधि बतलाइये ।

श्रीराधा-जन्माष्टमीका महोत्सव मनाना और पूजा करना अत्यन्त आवश्यक है

शिवजी बोले—वृषभानुपुरीके राजा वृषभानु महान् उदार थे । वे महान् कुलमें उत्पन्न तथा सब शास्त्रोंके ज्ञाता थे । अणिमा-महिमा आदि आठ प्रकारकी सिद्धियोंसे युक्त, श्रीमान्, धनी और उदारचेता थे । संयमी, कुलीन, सद्विचारसे युक्त तथा श्रीकृष्णके आराधक थे । उनकी भार्या श्रीमती श्रीकीर्तिदा थीं । वे रूप-यौवनसे सम्पन्न थीं और महान् राजकुलमें उत्पन्न हुई थीं । महालक्ष्मीके समान भव्य रूपवाली और परम सुन्दरी थीं । वे सर्व विद्याओं और गुणोंसे युक्त, कृष्णस्वरूपा तथा महापतिव्रता थीं । उनके ही गर्भसे शुभदा भाद्रपदकी शुक्लाष्टमीको मध्याह्न कालमें श्रीवृन्दावनेश्वरी श्रीराधिकाजी प्रकट हुईं । वेद-शास्त्र तथा पुराणादिमें जिनका 'कृष्णवल्लभा' कहकर गुणगान हुआ है, वे श्रीराधा सदा श्रीकृष्णको आनन्द प्रदान करनेवाली, साध्वी, कृष्णप्रिया थीं । हे महाभाग ! अब मुझसे श्रीराधा-जन्म-महोत्सवमें जो भजन-पूजन, अनुष्ठान आदि कर्तव्य हैं, उन्हें सुनिये । सदा श्रीराधा-जन्माष्टमीके दिन व्रत रखकर उनकी पूजा करनी चाहिये । उस पूजामें ध्यान आदिकी सारी विधि मैं क्रमशः कहूँगा । सर्वदा पश्चिमद्वार श्रीराधा-कृष्णके मन्दिरमें ध्वजा, पुष्पमाल्य, वस्त्र, पताका, तोरणादि नाना प्रकारके मङ्गल द्रव्योंके द्वारा यथाविधि पूजा होती है । स्तुतिपूर्वक सुवासित गन्ध, पुष्प-धूपादिसे सुगन्धित करके उस मन्दिरके बीचमें पाँच रंगके चूर्णसे मण्डप बनाकर उसके भीतर षोडश दलके आकारका कमल-यन्त्र बनाये । उस कमलके मध्यमें दिव्यासनपर श्रीराधाकृष्णकी युगल-मूर्ति पश्चिमाभिमुख स्थापित करके ध्यान, पाद्य-अर्घ्यादिके द्वारा क्रमपूर्वक भलीभाँति उपासना करके सजातीय भक्तोंके साथ अपनी शक्तिके अनुसार पूजाकी सामग्री लेकर उनका भक्त भक्तिपूर्वक सदा संयतचित्त होकर पूजा करे ।

श्रीराधा-माधव-युगलका ध्यान

हेमेन्दीवरकान्तिमञ्जुलतरं श्रीमज्जगन्मोहनं
नित्याभिर्ललितादिभिः परिवृतं सन्नीलपीताम्बरम् ।
नानाभूषणभूषणाङ्गमधुरं कैशोररूपं युगं
गान्धर्वाजनमव्ययं सुललितं नित्यं शरण्यं भजे ॥
(पद्म० उत्तर० १६२ । ३१)

'जिनकी स्वर्ण और नील कमलके समान अति सुन्दर कान्ति है, जो जगत्‌को मोहित करनेवाली श्रीसे सम्पन्न हैं, नित्य ललिता आदि सखियोंसे परिवृत हैं, सुन्दर नीले और पीत वस्त्र धारण किये हुए हैं तथा जिनके नाना प्रकारके आभूषणोंसे आभूषित अङ्गोंकी कान्ति अति मधुर है, उन अव्यय, सुललित, युगलकिशोररूप श्रीराधाकृष्णके हम नित्य शरणापन्न हैं ।' इस प्रकार युगलमूर्तिका ध्यान करके

शालग्राममें अथवा मनोमयी मूर्तिमें या साक्षात् पाषाण आदिकी मूर्तिमें पुनः सम्यक् रूपसे अर्चना करे। तब उनके सामने क्रमशः मण्डलमें आयी हुई सखियोंकी ध्यान-पाद्य-अर्घ्यादिके द्वारा प्रयत्नपूर्वक पूजा करे।

पूजन, महाप्रसाद-वितरण, महोत्सवकी महिमा और महान् फल

[यहाँ कमलके रूपमें मण्डलका एक यन्त्र बनाया जाता है, जिसे 'योगपीठ' कहते हैं। उसका पूरा वर्णन इसी लेखमें 'योगपीठ-पूजा' शीर्षकमें दिया गया है। उसीके अनुसार यहाँ मण्डलस्थ सखियोंकी पूजा करनी चाहिये।]

इस प्रकार श्रीराधाष्टमीके दिन यन्त्रमें सखियोंका पूजन करे तथा समागत सारे कृष्णभक्त वैष्णवोंकी यत्नपूर्वक पूजा करे। इस प्रकार प्रतिवर्ष श्रीराधाकृष्णकी पूजा, उनके मण्डलकी पूजा श्रीकृष्णके रास-महोत्सवके अवसरपर भी यत्नपूर्वक करे। श्रीकृष्णमें एकान्त प्रीति रखनेवाले पुरुषके द्वारा अवश्य पूजा कराये।

भगवान्‌को निवेदन किये गये गन्ध-पुष्प-माल्य तथा चन्दन आदिके द्वारा उन समागत कृष्णभक्तोंकी आराधना करे। अभक्तोंको शामिल करना तथा महाप्रसाद देना वर्जित है। श्रीराधाजीकी भक्तिमें दत्तचित्त होकर सजातीय भक्तवृन्दको साथ लेकर प्रयत्नपूर्वक, उनके लिये प्रस्तुत नैवेद्य, गन्ध-पुष्प-माल्य तथा चन्दन आदिके द्वारा दिनमें महोत्सव करे। पूजा करके दिनके अन्तमें भक्तोंके साथ आनन्दपूर्वक चरणोदक लेकर महाप्रसाद भक्षण करे। श्रीराधा-कृष्णका स्मरण करते हुए रातमें जागरण करे। चाँदी और सोनेकी सुसंस्कृत मूर्ति रखकर उसकी पूजा करे। दूसरी कोई वार्ता न करते हुए नारी तथा बन्धु-बान्धवोंके साथ पुराणादिसे प्रयत्नपूर्वक इष्टदेवता श्रीराधाकृष्णके कथा-कीर्तनका श्रवण करे। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक श्रीराधा-जन्माष्टमीके इस शुभानुष्ठानको करता है, उसके विषयमें सब देवतालोग कहते हैं कि 'यही मनुष्य भूतलमें राधाभक्त है।' इस अष्टमीको दिन-रात एक-एक पहरपर विधिपूर्वक श्रीराधामाधवकी पूजा करे। श्रीराधाकृष्णमें अनुरक्त रसिकजनोंके साथ आलाप करते हुए बारम्बार श्रीराधाकृष्णको याद करे। इस प्रकार महोत्सव करके परम आनन्दित होकर विधिपूर्वक साष्टाङ्ग दण्ड-प्रणाम करे। जो पुरुष अथवा नारी राधाभक्तिपरायण होकर श्रीराधा-जन्म-महोत्सव करता है, वह श्रीराधाकृष्णके सांनिध्यमें श्रीवृन्दावनमें वास करता है, वह राधाभक्तिपरायण होकर व्रजवासी बनता है। श्रीराधा-जन्म-महोत्सवका गुण-कीर्तन करनेसे मनुष्य भव-बन्धनसे मुक्त हो जाता है।

'राधा' नामकी तथा राधाकी महिमा, राधाका भजन करनेवालोंका भजन स्वयं शिवजी करते हैं—ऐसा कथन, राधाभक्तोंका महत्त्व, राधा-जन्माष्टमी-व्रतकी महिमा

जो मनुष्य 'राधा-राधा' कहता है तथा स्मरण करता है, वह सब तीर्थोंके संस्कारसे युक्त होकर सब प्रकारकी विद्याकी प्राप्तिमें प्रयत्नवान् बनता है। जो 'राधा-राधा' कहता है, 'राधा-राधा' कहकर पूजा करता है, 'राधा-राधा' में जिसकी निष्ठा है, जो 'राधा-राधा' उच्चारण करता रहता है, वह महाभाग वृन्दावनमें श्रीराधाजीकी सहचरी होता है। इस विश्वब्रह्माण्डमें यह पृथ्वी धन्य है, पृथ्वीपर वृन्दावनपुरी धन्य है। वृन्दावनमें सती श्रीराधाजी धन्य हैं, जिनका ध्यान बड़े-बड़े मुनिवर करते हैं। जो ब्रह्मा आदि देवताओंकी परमाराध्या हैं, जिनकी सेवा देवतालोग दूरसे ही करते रहते हैं, उन श्रीराधिकाजीको जो भजता है, उसको मैं भजता हूँ। हे महाभाग! उनका कथा-कीर्तन करो, उनके उत्तम मन्त्रका जप करो और रात-दिन 'राधा-राधा' बोलते हुए नाम-कीर्तन करो। जो मनुष्य कृष्णके साथ राधाका (अर्थात् राधेकृष्ण, राधेकृष्ण) नाम-कीर्तन करता है, उसके माहात्म्यका वर्णन मैं नहीं कर सकता और न उसका पार पा सकता हूँ। गङ्गा, गया और सरस्वती सदा हितकारिणी नहीं होती हैं; परंतु 'राधा' नाम-स्मरण कदापि निष्फल नहीं जाता, यह सब तीर्थोंका फल प्रदान करता है। श्रीराधाजी सर्वतीर्थमयी हैं तथा सर्वैश्वर्यमयी हैं। श्रीराधा-भक्तके घरसे कभी लक्ष्मी विमुख नहीं होती। हे नारद ! उसके घरमें श्रीराधाजीके साथ श्रीकृष्ण वास करते हैं। श्रीराधाकृष्ण जिनके इष्ट देवता हैं, उनके लिये यह श्रेष्ठ व्रत है। उनके घरमें श्रीहरि देहसे, मनसे कदापि पृथक् नहीं होते। यह सब सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारदजीने प्रणत होकर यथोक्त रीतिसे श्रीराधाष्टमीमें यजन-पूजन किया। जो मनुष्य इस लोकमें यह श्रीराधाजन्माष्टमी-व्रतकी कथा श्रवण करता है, वह सुखी, मानी, धनी और सर्वगुणसम्पन्न हो जाता है।

जो मनुष्य भक्तिपूर्वक श्रीराधाका मन्त्र जप करता है अथवा नाम-स्मरण करता है, वह धर्मार्थी हो तो धर्म प्राप्त करता है, अर्थार्थी हो तो धन पाता है, कामार्थी पूर्णकाम हो जाता है और मोक्षार्थी मोक्ष प्राप्त करता है। कृष्णभक्त वैष्णव सर्वदा अनन्यशरण होकर जब श्रीराधाकी भक्ति प्राप्त करता है तो सुखी, विवेकी और निष्काम हो जाता है ।

(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड अ० १६२-१६३ का कुछ अंश)

भविष्यपुराणमें आया है—

श्रीराधा-प्राकट्यकी तिथि और काल

वृषभानुरिति ख्यातो जज्ञे वैश्यकुलोद्भवः ।
सर्वसम्पत्तिसम्पन्नः सर्वधर्मपरायणः ॥
उवाह कीर्तिदानाम्नीं गोपकन्यामनिन्दिताम् ।
सर्वलक्षणसम्पन्नां प्रतप्तकनकप्रभाम् ॥
वृषभानुर्महाभक्तः कीर्तिदायास्तपोबलात् ।
अस्माद् विनयबाहुल्यात् तत्कन्या राधिकाभवत् ॥
भाद्रे मासि सिते पक्षे अष्टमी या तिथिर्भवेत् ।
अस्यां दिनार्द्धेऽभिजिते नक्षत्रे चानुराधिके ॥
राजलक्षणसम्पन्नां कीर्तिदासूत कन्यकाम् ।
अतीवसुकुमाराङ्गीं सितरश्मिसमप्रभाम् ।
त्रैलोक्याद्भुतसौन्दर्यां दोषनिर्मुक्तविग्रहाम् ॥

(भविष्यपुराण)

"वैश्यकुलमें वृषभानु नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं, वे सभी सम्पदाओंसे सम्पन्न तथा सभी धर्मोंके परायण थे। उन्होंने कीर्तिदा नामकी अनिन्द्यसुन्दरी एक गोपकन्यासे विवाह किया, जो सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे युक्त तथा तपाये हुए सोनेकी-सी कान्तिवाली थी। वृषभानु महान् भक्त थे। कीर्तिदाके तपोबलसे तथा विनयकी पराकाष्ठासे उनके 'राधिका' नामकी कन्या हुई। भाद्रपद मासके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिको मध्याह्नकालमें अभिजित् मुहूर्त और अनुराधा नक्षत्रके योगमें कीर्तिदा रानीने राजचिह्नोंसे सुशोभित इस कन्याको जन्म दिया। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग अत्यन्त सुकमार थे, जिनसे चन्द्रमाकी-सी ज्योति निकल रही थी। उसका सौन्दर्य त्रिलोकीमें विलक्षण था और शरीर सब प्रकारके दोषोंसे सर्वथा मुक्त था।"

गर्गसंहितामें प्रसङ्ग है—

श्रीराधा-प्राकट्यका कारण तथा प्राकट्य-महोत्सव

गर्गसंहितामें आता है—राजा बहुलाश्वके पूछनेपर श्रीनारदजी कहते हैं—"तुम्हारा यह कुल धन्य है; क्योंकि इसीमें राजा निमि हो चुके हैं। वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके सर्वश्रेष्ठ भक्त थे। फिर इसी कुलमें तुम भी उत्पन्न हुए हो। अतः इसे पूर्णरूपसे गौरव प्राप्त हो गया। तुम्हारा स्वभाव बहुत ही विलक्षण है, क्योंकि तुम संसारसे सम्बन्ध रखते हुए भी त्यागी हो। अब तुम उन पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाका श्रवण करो। वह पवित्र एवं कल्याणस्वरूप है। केवल कंसका संहार ही भगवान्के अवतारमें हेतु नहीं है। वे पृथ्वीपर संतजनोंकी रक्षाके लिये पधारे थे। राजन्! भगवान्ने ही अपनी महाशक्तिको प्रेरणा दी। अतः उन महाशक्तिने वृषभानुकी पत्नीके हृदयमें प्रवेश किया और वे ही 'राधिका' नामसे प्रकट हुईं। उनका अवतार एक भव्य भवनमें हुआ। वह स्थान यमुनाके तटपर निकुञ्ज-वनमें था। उस समय भाद्रपदका महीना था। शुक्लपक्ष एवं अष्टमी तिथि थी। मध्याह्न (दोपहर) का समय था। आकाशमें मेघ छाये हुए थे। देवताओंने उस मन्दिरपर फूलोंकी वर्षा की। वे फूल नन्दनवनसे उन्हें प्राप्त हुए थे। उस समय राधिकाजीके पृथ्वीपर प्रकट होनेपर नदियाँ स्वच्छ हो गयीं। सम्पूर्ण दिशाओंमें आनन्द फैल गया। कमलकी गन्धसे व्याप्त वायु चलने लगी, वह बड़ी ही शीतल, मनोहर और धीमी गतिसे बह रही थी। बादमें वृषभानुपत्नी कीर्तिको कन्या दिखायी दी। शरत्कालीन चन्द्रमाकी भाँति उसकी कान्ति थी। रूप मनको हरनेवाला था। अतः वे अत्यन्त आनन्दमें भर गयीं। तुरंत उन्होंने मङ्गल-विधान करवाया और पुत्रीके कल्याणकी कामनासे दो लाख गौएँ ब्राह्मणोंको दान कीं। श्रेष्ठ देवताओंको भी जिनका दर्शन मिलना कठिन है, मनुष्य करोड़ों जन्मोंतक तप करते हैं, परंतु जिनका साक्षात् नहीं कर पाते; वे ही श्रीराधिकाजी वृषभानुके यहाँ स्वयं प्रकट हुईं। गोपियोंने उनका लालन-पालन किया। यह प्रायः सभी जानते हैं। सखियाँ पालनेमें राधिकाजीको झुलाया करती थीं।

प्रेङ्खे खचिद्रत्नमयूखपूर्णे सुवर्णयुक्ते कृतचन्दनाङ्गे ।
आन्दोलिता सा ववृधे सखीजनैर्दिने दिने चन्द्रकलेव भाभिः ॥
श्रीरासरङ्गस्य विकासचन्द्रिका दीपावलीभिर्वृषभानुमन्दिरे ।
गोलोकचूडामणिकण्ठभूषणां ध्यात्वा परां तां भुवि पर्यटाम्यहम् ॥

(गर्गसंहिता १ । ८ । ११-१२)

'वह पालना सुवर्णसे बनाया गया था। उसमें रत्न जड़े हुए थे। चारों ओर चन्दन छिड़का गया था। प्रतिदिन

राधिकाजीका श्रीविग्रह बढ़ता जाता था। ठीक उसी प्रकार, जैसे शुक्लपक्षमें प्रतिदिन बढ़ते हुए प्रकाशसे चन्द्रमाकी कलामें विस्तार होता जाता है। जो रासमण्डलको आह्लादित करनेवाली स्वच्छ चाँदनी हैं, जिन्होंने वृषभानुके भवनको अनन्त उज्ज्वल दीपावलियोंके समान प्रकाशित कर दिया है तथा जो गोलोकमें चूडामणिके रूपमें विराजमान भगवान् श्रीकृष्णके गलेकी हार हैं, उन पूजनीय राधिकाजीका ध्यान करके मैं पृथ्वीपर विचर रहा हूँ।'

श्रीवृषभानु तथा श्रीकीर्तिजी पूर्वजन्ममें कौन थे ?

श्रीनारदजी कहते हैं—तदनन्तर बहुलाश्वके पूछनेपर नारदजीने श्रीवृषभानु तथा श्रीकीर्तिजीके पूर्वजन्म तथा वरदानका इतिहास सुनाया। देवर्षि नारदजी बोले—एक राजा नग थे। उनके यहाँ सुचन्द्र नामक पुत्रका जन्म हुआ। सुचन्द्र अत्यन्त बड़भागी थे। राजाओंके ऊपर भी उनका शासन था। वे चक्रवर्ती थे। उन्हें साक्षात् भगवान्का अंश माना जाता था। उनका शरीर बड़ा ही कोमल था। (अर्यमा आदि) पितरोंके यहाँ संकल्पमात्रसे तीन कन्याएँ उत्पन्न हुईं। तीनों बड़ी ही कमनीय-मूर्ति थीं। उनके नाम थे—कलावती, रत्नमाला और मेनका। कलावती सुचन्द्रके साथ ब्याही गयीं। सुचन्द्र बड़े विद्वान् और भगवान्के अंशावतार थे। रत्नमाला विदेह (जनक) को समर्पित कर दी गयीं और गिरिराज हिमालयने मेनकाका पाणिग्रहण किया। पितरोंने अपनी रुचिके अनुसार ब्राह्मविधिसे ये कन्याएँ दान कीं। रत्नमालासे सीताजी प्रकट हुईं। मेनकाके गर्भसे पार्वतीजीका अवतार हुआ। महामते! इन दोनोंकी कथाएँ पुराणोंमें जगह-जगह वर्णित हैं। तदनन्तर, पत्नी कलावतीको साथमें लेकर सुचन्द्र गोमती नदीके तटपर स्थित एक वनमें चले गये। उन्होंने ब्रह्माजीकी तपस्या की। वह तप देवताओंके वर्षसे बारह वर्षोंतक चलता रहा। पश्चात् ब्रह्माजी वहाँ पधारे और उन्होंने सुचन्द्रको वरदान दिया—

'तुमलोग मेरे साथ स्वर्गमें चलो और वहाँ नाना प्रकारके आनन्दका उपभोग करो। समय आनेपर तुम दोनों पृथ्वीपर उत्पन्न होओगे। द्वापरके अन्तमें गङ्गा और यमुनाके बीच, भारतवर्षमें तुम्हारा जन्म होगा। तुम्हीं दोनोंसे स्वयं परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णकी प्राण-प्रिया देवी राधिकाजी पुत्रीके रूपमें प्रकट होंगी। उसी समय तुम्हें परम धाम प्राप्त होगा।'

श्रीनारदजी कहते हैं—इस प्रकार ब्रह्माजीका वरदान हुआ। वह महान् पवित्र तथा कभी भी निष्फल होनेवाला नहीं था। अतः उसीके प्रभावसे भूमण्डलपर कीर्ति तथा वृषभानु हुए। कन्नौज देशमें एक राजा थे। भलन्दन नामसे उनकी प्रसिद्धि थी। उन्हींके यहाँ यज्ञकुण्डसे कलावतीका प्रादुर्भाव हुआ। कलावती अपने पूर्वजन्मकी सारी बातें जानती थीं। उनका स्वभाव भी बहुत विलक्षण था। सुरभानुके घर सुचन्द्रका जन्म हुआ। उस समय वे वृषभानु नामसे विख्यात हुए। उन्हें भी पहले जन्मका स्मरण था। गोपोंमें उनकी प्रधानता थी। वे इतने सुन्दर थे कि एक दूसरे कामदेव ही माने जाते थे। नन्दजीकी बुद्धि बड़ी निर्मल थी। उन्होंने दोनोंका परस्पर सम्बन्ध जोड़ दिया। उन दोनोंको पूर्वजन्मकी स्मृति तो थी ही। अतः वे दोनों चाहते भी ऐसा ही थे। जो मनुष्य इस वृषभानु और कलावतीके उपाख्यानका श्रवण करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है। अन्तमें वह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके परमधामका अधिकारी भी होता है।

(गर्गसंहिता १ । ८)

नारदपुराणमें लिखा है—

श्रीराधा-जन्माष्टमी-व्रत

नारदपुराण पूर्वभाग, अध्याय ११७ में श्रीराधा-जन्माष्टमीव्रतका वर्णन करते हुए सनातन मुनिने कहा है—

''भाद्र शुक्ला अष्टमीको मनुष्य 'राधा-व्रत' करे। कलशस्थापन करके उसके ऊपर श्रीराधाकी स्वर्णमयी प्रतिमाका पूजन करना चाहिये। मध्याह्नकालमें श्रीराधाजीका पूजन करके एकभुक्त व्रत करे। ××× विधिपूर्वक राधाष्टमी-व्रत करनेसे मनुष्य व्रजका रहस्य जान लेता है तथा राधा-परिकरोंमें निवास करता है।''

इसी प्रकार आदिपुराण, तन्त्र और अन्य कई प्राचीन ग्रन्थोंमें भी राधा-प्राकट्य तथा व्रतका वर्णन आया है।*

---

* श्रीराधा-जन्माष्टमी-व्रत-महोत्सवके सम्बन्धमें पूजाविधि, योगपीठ-पूजन, मण्डलस्थ सखियोंके नाम, स्थान, पूजा-विधान आदि सभी आवश्यक विषयोंपर प्रकाश डालनेवाली 'श्रीराधा-जन्माष्टमी-व्रत-महोत्सवकी प्राचीनता, महिमा और पूजाविधि' नामक एक पुस्तिका गीताप्रेससे निकली है। तीस पैसे मूल्य है। उसे अवश्य पढ़ना चाहिये।

श्यामका स्वभाव—८

(लेखक—श्रीसुदर्शनसिंहजी)

अधूरा कुछ नहीं लेता कन्हाई। यह इसका स्वभाव है कि लेगा तो पूरा लेगा और नहीं तो लेगा ही नहीं। आप इसे आधा चित्त, आधी बुद्धि देना चाहते हैं? लाख प्रयत्न कर लीजिये—मुख फुलाकर, पीठ फेरकर रूठे बैठा रहेगा। देखेगा भी नहीं। न आधा, न तीन चौथाई—देना है तो पूरा दीजिये। इसने स्पष्ट कह रक्खा है—

'मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।'

'मन मुझमें ही रख दो! बुद्धिको मुझमें प्रविष्ट करो!' इसीलिये गोस्वामी तुलसीदासजीको कहना पड़ा—

'जरउ सो संपति सदनसुख सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो रामपद करइ न सहस सहाइ॥'

× × × ×

'जरि जाहु सो जीवन जानकिनाथ जियें जगमें तुम्हरो बिनु ह्वै।'

'जो श्रीरामके चरणोंके सम्मुख होनेमें सहर्ष सहायता न करें—विरोधकी बात तो बहुत दूर, जो बेमनसे सहायता करें, उन सम्पत्ति, गृहसुख, सुहृद्-सम्बन्धी, माता-पिता, भाइयोंको और उस अपने जीवनको भी, जो तुम्हारा नहीं हो गया, जलने दो! आग लगे उनमें।'

संसारका सुख-सम्मान भी और कन्हाईका प्रेम भी! यह नहीं होनेका है। माता-पिता, भाई, स्त्री-पुत्र, घर-परिवार, शरीरकी आसक्ति भी बनी रहे, आप इनकी सुरक्षा, श्रीवृद्धिके लिये भी चिन्तित रहें और बाबा नन्दका लाड़ला भी आपका हो जाय, यह हो नहीं सकता।

कन्हाई आपका—सदा सदाका आपका ही है। सत्य यही है कि इस बनमाली, मयूरमुकुटीके अतिरिक्त कोई आपका नहीं; किंतु आपने ही तो इसे रूठनेको विवश किया है। आप इसके हैं क्या? पूर्णतः इसके हैं आप, तो यह आपका और इसके अतिरिक्त भी कोई, कुछ आपका है तो—व्रजराजकुमारके स्वभावमें अधूरा अर्पण स्वीकार करना नहीं है। बड़ा लज्जालु है यह। आपके समीप आपके हृदयमें कोई-कुछ और होगा तो यह वहाँ नहीं आयेगा। यह लेगा—स्वीकार करेगा तो पूरा हृदय—अन्यथा बिल्कुल नहीं।

जीवनका सम्पूर्ण समर्पण—इससे तनिक भी कम श्रीकृष्णको स्वीकार नहीं है। आपने इसपर कभी विचार किया है? आप अनन्तको पाना चाहते हैं, आपके समीप लोटा हो या घड़ा, समुद्र आवेगा उसमें? अनन्त समुद्रकी प्राप्तिका एक ही उपाय है—आप पूरेके पूरे समुद्रमें उतर जाइये। आप समुद्रके और समुद्र आपका!

एक सज्जनने कहा—'आप कहते ठीक हैं; किंतु……'।

भाई मेरे! किसने कहा आपसे कि आप कन्हाईके पीछे पड़ें? लोग कहते हैं और जन्म-जन्मके आपके संस्कार समर्थन करते हैं कि लोक-मर्यादा, लोक-सम्मानका ध्यान रखना चाहिये। अपने तथा अपने आश्रितोंके पालन-पोषण, रक्षण, वर्धनका प्रयत्न करना चाहिये। धन, यश, पदकी रक्षा-प्राप्तिसे उदासीन नहीं होना चाहिये। चाहिये! चाहिये! चाहिये—ठीक, सब चाहिये और इसमें आप सावधानीसे लगे रहें यह भी चाहिये—अब कृपा करके व्रजेन्द्रनन्दन और उनका प्रेम चाहिये, यह मत कहिये! क्योंकि यह चाहिये तो, दूसरा सब 'चाहिये' छोड़े बिना उपाय नहीं है। आप एक साथ दो विपरीत दिशाओंमें नहीं चल सकते।

आपने सुना है? न सुना हो तो सुनिये कि मस्त मौला संत कबीर क्या कह रहे हैं—

'कबिरा खड़ा बजारमें, लिये लुआठी हाथ।
जो घर फूँकै आपना, चलै हमारे साथ॥'

कबीर जलती लकड़ी लेकर खुले बाजारमें खड़ा है। जिसे अपना घर फूँकना हो, वह हमारे साथ चले।

अपना घर क्यों फूँकना? इसलिये कि कबीरके साथ चलना है। अपना घर भी बनाये रक्खो और इस प्रेमके पंथपर भी चलो, यह बननेवाली बात नहीं है।

लोकमर्यादा, लोक-लीक—किंतु कभी सोचा आपने कि यह लोक क्या है? मैं अपवादकी बात नहीं करता, सब नियमोंमें थोड़े अपवाद होते हैं, किंतु उनसे नियम अनियम नहीं हो जाते। नियम यह कि यह सब संसार, संसारके समस्त सम्बन्ध मायिक हैं। माया किसीको प्रसन्नतासे अनुमति देती है कि वह उसके घेरेको नष्ट कर दे?

माता-पिता, पति-स्त्री, पुत्र-भाई, परिवार-सम्बन्धी, समाज—किसीने प्रसन्नतासे कभी किसीको श्यामका होने दिया है कि आप अपने लिये ऐसी आशा किये बैठे हैं?

मीराँ, प्रह्लाद, ध्रुव—किसीको तिल-तिल तड़पाया गया, किसीको प्रलोभन दिया गया। पीछे उसकी पूजा समाज कर लेता है। लोकने कभी वर्तमानका सम्मान नहीं किया। यह तो भूतको पूजनेवाला है।

माता-पिता कहते हैं—'बच्चा आस्थाहीन है। वह न जप करता, न पूजा। मन्दिरोंमें भी उसकी श्रद्धा नहीं। गुरुजनोंका सम्मान नहीं करता। भगवान्‌का भजन करना चाहिये उसे।'

थोड़ेसे समझदार माता-पिता ऐसा कहते, चाहते हैं। अन्यथा तो समाज जैसा है—आप जानते ही हैं। किंतु यदि बच्चा सचमुच भजन-पूजनमें लगने लगे तो वही कहते हैं—'इसे समाजका भी तो ध्यान रखना चाहिये!'

'बच्चा उदासीन हो रहा है। वह ठीक-ठिकानेके वस्त्र भी नहीं पहिनता। उसे विवाह करना चाहिये। कुलपरम्परा चलानी चाहिये। कुछ कमाना-धमाना चाहिये। लीजिये—उसे पता नहीं क्या-क्या करना चाहिये। एक साथ उसे अनुरक्त और विरक्त दोनों होना चाहिये—है न अद्भुत माँग!

इस प्रकारका तो यह समाज है। समाजके अच्छे, आस्थावान् धार्मिक माता-पिता, सगे-सम्बन्धी हैं और दूसरी ओर यह नटखट यशोदाकुमार है कि यह कहता है—'सबकी सुननी, माननी हो तो चुपचाप उधर ही लगे रहो। मेरी ओर आनेका दमखम हो तो केवल इधर देखो! दूसरी सब ओरसे आँख-कान बंद कर लो। मत सुनो कि दूसरे क्या कहते हैं। मत देखो कि दूसरोंका—देहका भी क्या होता है। मेरी ओर ही देखो तो मैं तुम्हारी ओर देखूँगा।'

'अपने उपार्जनका······भाग मैं अवश्य धर्ममें लगा देता हूँ।' एक सेठजीने कहा।

'आप धर्मात्मा हैं।' मैं और क्या कह सकता था। वे सचमुच उत्तम धर्मात्मा हैं। लेकिन कन्हाई धर्मके बन्धनमें तो नहीं आता।

'आपको उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होगी।' यह आश्वासन तो उन्हें शास्त्रने दे रक्खा है; किंतु भगवत्प्राप्ति?

श्याम उपार्जनका अमुक भाग लेकर संतुष्ट होनेवाला नहीं है। इसे तो पूरा उपार्जन चाहिये। आप श्रीकृष्णको चाहते हैं? तब अपनी पूरी गद्दी, पूरा जीवन इसके नाम कीजिये! यह इसका कोई भाग लेने नहीं आयेगा!

महाभारतका युद्ध होना था। युद्धमें सहायताके लिये द्वारिकानाथको आमन्त्रित करने दुर्योधन और अर्जुन साथ ही द्वारिका पहुँचे। दुर्योधन दो क्षण पहिले पहुँच गये; किंतु श्रीकृष्ण शयन कर रहे थे, अतः सिरहानेकी ओर वे सिंहासनपर चुपचाप बैठ गये। अर्जुन दो क्षण पीछे पहुँचे और अपने नित्य-सखाके चरणोंके समीप पर्यङ्कपर ही बैठ रहे।

निद्रा टूटी। उठे श्रीद्वारिकाधीश। चरणोंके समीप बैठे अर्जुनपर दृष्टि पड़ी तो झटपट उठते हुए बोले—'अरे! अर्जुन! कैसे अकस्मात् आये?'

दुर्योधन चौंके। लगा कि बात बिगड़ी। बोल पड़े—'मैं पहिले आया हूँ।'

'ओह, आप!' श्रीकृष्णने मुख घुमाकर देखा। दोनों-की प्रार्थना सुनी और बोले—'युद्धमें एक ओर मैं अकेला रहूँगा। शस्त्र नहीं लूँगा। दूसरी ओर मेरी सशस्त्र पूरी नारायणी सेना रहेगी; किंतु कुरुराज! अर्जुन आपसे छोटे हैं। मैंने पहले इन्हें देखा है। इनको पहले अधिकार है कि ये इन दोनोंमें जो चाहें चुन लें।'

अर्जुनने बड़े उल्लाससे कहा—'मैंने तुम्हें लिया।'

दुर्योधन बड़ी आतुरतासे बोले—'ठीक है, ठीक है। मैं सेना स्वीकार करता हूँ। आप तो युद्धमें अस्त्र लेकर लड़ेंगे नहीं?'

'नहीं। मैं अस्त्र नहीं लूँगा।' श्रीकृष्णने आश्वासन दिया। दुर्योधनने प्रसन्नतापूर्वक विदा ली।

'अर्जुन! तुमने यह क्या किया?' हँसते हुए श्रीकृष्ण बोले। 'तुम्हें युद्ध करना है और उसमें विजय पानी है। द्वारिकाकी नारायणी सेनाका पराक्रम तुमसे अविदित नहीं है। उसे विपक्षमें देकर तुमने शस्त्रहीन मुझको क्यों चुना?'

'श्याम! ठगो मत मुझको।' अर्जुनने दृढ़ स्वरमें कहा। 'पाण्डुपुत्र पराजित हों या विजयी। तुमको त्यागकर हमें त्रिभुवनका निष्कण्टक साम्राज्य भी नहीं चाहिये। जो जाता हो, जाय; जो नष्ट होता हो, नष्ट हो; किंतु तुम हमारे रहो। तुमको हम छोड़ नहीं सकते।'

कन्हाई सारथि बना अर्जुनका। जो इसको चाहता है—जो इसके लिये सब उत्सर्ग किये बैठा है, कन्हाई उसका। वह जो बनावे, कन्हाई वह बननेको प्रस्तुत। वह जो करावे, कृष्ण वह करनेको उद्यत।

× × ×

'आप द्रोणाचार्यसे कहिये कि अश्वत्थामा मारा गया !'– धर्मराज युधिष्ठिरसे श्रीकृष्णने कहा ।

'श्याम ! सत्य तो नहीं है यह । भीमसेनने तो केवल अश्वत्थामा नामक हाथीको मारा है ।' परम धर्मात्मा, सत्यके सच्चे पुजारी युधिष्ठिर हिचक गये ।

'मैं कहता हूँ—मेरी आज्ञा है कि आप कहिये !' श्रीकृष्णने कहा ।

'अश्वत्थामा हतो नरो वा कुञ्जरो वा ।' युधिष्ठिरने यह कहा । कहा जाता है कि युधिष्ठिरका रथ भूमिसे दो अंगुल ऊपर रहता था, इस असत्यके छल-वचनके कारण भूमिसे लग गया । इस वचनके कारण युधिष्ठिरको स्वर्ग जाकर नरक-दर्शन करना पड़ा ।

क्यों ऐसा हुआ ? इसलिये कि युधिष्ठिरने श्रीकृष्णकी आज्ञा बिना हिचक और यथावत् स्वीकार नहीं की । युधिष्ठिरको नरकका दर्शन करा लेते यमराज—साहस था उनमें ?

श्रीकृष्णने कहा अर्जुनसे युद्धारम्भमें ही—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

यह धर्म और यह अधर्म ! इस धर्मसे यह होगा—इस अधर्मसे यह ! व्यर्थकी चिन्ता है यह सब ! धर्मका फल है स्वर्ग । आपको स्वर्ग चाहिये या श्रीकृष्ण-प्रेम ? कन्हाई कहता है—'सब धर्मोको—सब धर्मोके आश्रयको—इस धर्माचरणसे यह होगा, इस धर्माचरणके न करनेसे यह दोष होगा—इन सबको छोड़ दो ! मत चिन्ता करो इनकी । केवल मेरी शरण लो ! मेरे आश्रयको ग्रहण करो ! डरो मत ! शोक मत करो ! सब पापोंसे तुम्हें मैं छुड़ा दूँगा ।'

भय किसका ? धन-धर्म अर्थात् कायिक सुख-समृद्धि, सुयश-सम्मानका ? परलोककी बात मैं नहीं करता । आप भी नहीं करते । आज कदाचित् ही कुछ थोड़े लोग हों जो स्वर्गकी चिन्ता करते हों और नरकका भय ? कन्हाईको अपनाने जो चलते हैं उनको नरकसे भय होगा ?

'सरगनरक अपबरग समाना । जहँ तहँ दीख धरें धनु बाना ॥'

है यह कायिक सुख-समृद्धि और सम्मानका मोह ही—नाम आप इसे कर्तव्य दे लें या और कुछ भव्य नाम देनेसे तो तथ्य बदलेगा नहीं । श्यामका प्रेम और मोह साथ नहीं रह सकते ।

जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम ।
तुलसी कबहुँ कि रहि सकहिं, रबि-रजनी इक ठाम ॥

'एक सज्जनने कहा—'सत्संग, कथा, कीर्तनादिसे दूर ही रहना चाहिये । आजकल इसके बहाने ठगनेवाले बहुत हो गये हैं ।'

मैंने पूछा—'ठगनेवाले क्या ठगते या ठग सकते हैं ?'

उनका कहना था—'धन और धर्मतक भी ।'

पहली बात—धर्मनिष्ठका धर्म ठगे जानेकी वस्तु है ! उसे कोई ठग सकता है ?

धर्म क्या—यह भी समझा है आपने या रूढ़ मान्यतामें मात्र धर्म हैं ? आचारनिष्ठका धर्म आचार और भक्तका धर्म भगवत्प्रेम । इस प्रेमको कोई ठग सकता है ?

'सर्वधर्मान् परित्यज्य' इसका अर्थ क्या आपने यह माना है कि 'सर्वार्थान् सुसंरक्ष्य ?'

'लोकेऽपि तावदेव' केवल वैदिक मर्यादामें ही नहीं—लौकिक व्यवहारमें भी उतना ही पालन—यहाँ भी यही आदर्श—

तदनुकूलाचरणं तद्विरोधिषूदासीनता च ।

जिसे आप त्यागने चले हैं, जिससे आपको उदासीन होना है, उसे कोई ले ले । कोई उसका उपयोग कर ले—आपको दुःख क्यों ? शौचालयमें आप मल त्याग आये, कभी चिन्ता करते हैं कि उस मलका कौन क्या करता है ?

'धन-सम्बन्ध, प्रतिष्ठाके प्रति इतना निरपेक्ष होना तो बहुत कठिन है ।'

ठीक कहते हैं आप । इसीलिये कन्हाईको अपना बना लेना भी बहुत कठिन है । यह श्रीव्रजेन्द्रका इकलौता कुमार बहुत हठी है । बहुत बिगड़ा स्वभाव है इसका । यह कुछ थोड़ा लेना जानता नहीं । इसे तो सम्पूर्ण लेना और फिर अपनेको सम्पूर्ण देना ही आता है ।

आपका सम्पूर्ण कितना है, कैसा है—यह प्रश्न नहीं है । आप सम्राट् हैं तो पूरा साम्राज्य और कंगाल हैं तो फूटे पात्रकी पूरी पूँजी—लेगा यह जो आपके पास है, वह पूरा । अच्छा-बुरा, भरा-खाली जैसा हृदय है, पूरा लेगा यह । इसे पूरा ही पाया जा सकता है और उसका यही मार्ग है ।

ममता-मोहका बन्धन

[एकाङ्की नाटक]

(लेखक——डॉक्टर श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

प्रथम जीवन-झाँकी

जीवनसे विरक्त भगवद्भक्तिमें पगे गेरुवाँ वस्त्र धारण किये एक संन्यासी नदीमें स्नान कर पर्णकुटीमें आते हैं। उनके शरीरपर नग्नावस्थाको ढकनेमात्रके लिये एक छोटी-सी जीर्ण-शीर्ण कौपीनमात्र है। वस्त्र नामकी किसी चीजसे उन्हें माया-मोह नहीं है। वैरागीको सांसारिक वस्तुओंसे क्या लगाव! उनके गीले शरीरसे पानी अब भी टपक रहा है।

किंतु उनकी कौपीन अब इतनी जर्जर अवस्थामें है कि वे कठिनतासे अपना नंगापन ढक पाते हैं। कौपीन बदलकर नया ले लेनेकी बेहद जरूरत है, लेकिन संसारके माया, ममता और मोहसे छूटे हुए साधुका ध्यान उस ओर नहीं है। अपने शिष्योंको विद्या-दान देना, उपदेश करना, साधन, पूजन, स्वाध्यायमें लगे रहना ही उनके जीवनका क्रम है। वे अपना अधिकांश समय शिष्योंके जीवन-निर्माणमें ही बिताते हैं। उनके शिष्य उनकी वैरागी वृत्तिसे चिन्तित रहते हैं। वे चाहते हैं कि उनके गुरुको जीवन बितानेकी सभी आवश्यक वस्तुएँ मिलती रहें, जिससे वे अधिक दिनोंतक अध्यापन-कार्य करते रहें।

शिष्य गुरुजीकी नग्नावस्था देखकर मन-ही-मन दुखी हैं। वे प्रायः सोचा करते हैं कि कैसे गुरुजीकी सेवा करें। फटी कौपीन देखकर उनको बड़ा विक्षोभ होता है। क्या करें कि गुरुकी मर्यादा बनी रहे!

उस दिन शिष्य अपना प्रस्ताव इन शब्दोंमें गुरुजीकी सेवामें रखते हैं—

एक शिष्य—(विनम्र और आदरभरे स्वरमें) गुरुदेव! हम शिष्योंके मनमें आपके प्रति असीम श्रद्धा और भक्ति है। कई बार हम सबने आपके सामने एक प्रस्ताव रखनेकी बात सोची, पर रुष्ट करनेके डरसे न कह सके।

दूसरा शिष्य—(साग्रह) गुरुदेव! सचमुच हम सबकी तरफसे आपसे कुछ निवेदन करना चाहते हैं, पर आपको नाराज करनेके भयसे कुछ निवेदन करते नहीं बनता। आज तो आपको हमारा विनम्र निवेदन सुनना ही होगा…आज्ञा मिले, तो कुछ निवेदन करें……(चरणोंपर गिरकर पैर पकड़ते हैं। विरक्त साधु शिष्योंको पुत्रवत् प्यार करते हैं। वे दयार्द्र हो उठते हैं।)

गुरुदेव—(दयार्द्र स्वरमें हर्षित मुद्रा) अच्छा…… अच्छा!! तुमलोग नहीं मानते, तो कहो, क्या कहना चाहते हो? मैं माया-मोहसे दूर हूँ। सांसारिक बन्धनोंमें नहीं फँसना चाहता हूँ…दुनिया छोड़ चुका हूँ। कुछ ऐसा प्रस्ताव न रख देना कि मैं दुनियाके प्रलोभनमें फिर फँस जाऊँ…यह माया बड़ी ठगनी है। तरह-तरहसे अपने फंदे फेंकती रहती है। मैं अपने शिष्योंका पुत्रवत् प्रेम करता हूँ। उनके मनकी बात सुनना मेरा कर्तव्य हो जाता है।

पहला शिष्य—(चुपकेसे दूसरेसे) 'तुम्हीं कहो! मुझे तो भय होता है कि कहीं गुरुदेव प्रस्ताव सुनकर नाराज न हो जायँ।'

दूसरा शिष्य—'अच्छा, लो मैं ही निवेदन कर देता हूँ।'

पहला शिष्य—'गुरुदेव! यह जो कह रहे हैं, वह हम सबकी ओरसे समझियेगा।'

दूसरा शिष्य—गुरुदेव, आपके पास नग्नावस्था ढकनेको केवल एक ही फटी जीर्ण कौपीन है। अब वह इतनी जीर्ण हो चुकी है कि तन ढकनेमें असमर्थ है। उसमें इतनी सामर्थ्य नहीं कि शरीर-रक्षणका कर्तव्य निभा सके। वह तो वस्त्रका उपहासमात्र है!

पहला शिष्य—(आदरसहित) आपके पास केवल यही कौपीन है। उससे स्नान करने, उसे साफ करने, फिर पहननेमें आपको बड़ा कष्ट होता है। आपकी यह स्थिति नहीं देखी जाती। यदि एक और कौपीन हो, तो उसे धारण कर गंदी कौपीनको साफ कर लिया जाया करे। सफाईकी दृष्टिसे आपके पास दो कौपीनका होना आवश्यक है।

दूसरा शिष्य—गुरुदेव! यह जरूरत देख हम एक और कौपीन आपके लिये पहलेसे ही ले आये हैं। कई बार इसे भेंट करनेका साहस किया, किंतु संकोच और भयके कारण प्रस्तुत न कर सके। (कौपीन दिखाता है) देखिये, यह नयी कौपीन है। विशेषरूपसे आपके लिये लाये हैं। (अनुनय करते हुए) लीजिये, इसे धारण कर लीजिये। हमें कदापि

निराश न करें। बड़ी आशा और श्रद्धासहित यह तुच्छ भेंट प्रस्तुत कर रहे हैं।

गुरुदेव—(कौपीन हाथमें लेकर) बच्चा ! मैं विरक्त साधु हूँ। संसारको त्याग संन्यासीका निर्मोह वैरागी जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। त्याग जीवनका एक आवश्यक धर्म है, जीवन-शोधनका राजमार्ग है। संसारसे विरक्त होनेपर ही मोक्षकी प्राप्ति सम्भव हो सकती है।

पहला शिष्य—गुरुदेव! आप तो सब कुछ छोड़ चुके हैं। हम आपका त्यागमय जीवन देखते रहते हैं। आपने ही तो हमें सिखलाया है कि इन सभी बातोंका त्याग किया जाय, जो मनुष्यके लिये अशुभ हैं। बुरी चीजोंका त्याग करनेपर ही तो शुभकी प्रतिष्ठा होगी।

दूसरा शिष्य—लेकिन एक दूसरी कौपीन रखना तो अत्यन्त आवश्यक है। मल-मूत्र-विसर्जनमें भी पहनी हुई कौपीन अपवित्र हो सकती है। स्वास्थ्य और पवित्रताकी दृष्टिसे दूसरी कौपीन लेनी जरूरी है। हमपर दया करें और इसे स्वीकार करें।

गुरुदेव—बच्चो ! आदमीका यह जीवन एक पगडंडी है और यह पगडंडी बड़ी लंबी है। संसारका मोह बड़ा विचित्र है। मोह और ममतासे बचनेके लिये नित्य सावधानीके साथ त्याग करना पड़ेगा ही। मेरे लिये तो एक ही कौपीन बहुत है। व्यर्थ माया-मोह बढ़ानेसे क्या लाभ !

(दोनों शिष्य गुरुदेवके पाँवोंमें लोटने लगते हैं। उन्हें दया आ जाती है। पुत्रवत् वात्सल्यके कारण वे शिष्योंके प्रेमपूर्ण आग्रहको स्वीकार कर कौपीन-जैसी तुच्छ भेंटको स्वीकार कर लेते हैं। दया परमात्माका गुण है। परमात्माका यह दिव्य गुण उन्हें अभिभूत कर लेता है।)

गुरुदेव—अच्छा, अच्छा, तुम दोनोंका इतना प्रेमपूर्ण आग्रह है, तो स्वच्छताकी दृष्टिसे मैं इस कौपीनको ले लेता हूँ। इसे धारण करूँगा, तबतक तुम पुरानी कौपीनको धोकर साफ कर दिया करना। तुम्हारा मन रखना है।

दोनों शिष्य—(हर्षित होकर) अहह ! गुरुदेवने हमारी तुच्छ भेंट स्वीकार कर ली। एक कौपीन धोकर सुखा दी जायगी, तबतक आप दूसरी धुली हुई पहिन लिया कीजियेगा। गुरुजी ! हम प्रेमसे यह चीज लाये थे। अब तीर्थयात्रापर जा रहे हैं। बहुत दिनोंमें वापस लौटेंगे। हमें यह संतोष है कि हमारे गुरुदेवने हमारी तुच्छ भेंट स्वीकार कर ली है।

गुरुदेव—अच्छा, तुमलोग तीर्थयात्रापर जा रहे हो। खैर, यह भी जरूरी है। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। यहाँ और भी चेले हैं, तबतक वे देख-रेख करेंगे। तुम जल्दी ही वापस आनेका प्रयत्न करना।

(दोनों शिष्य आदरसहित प्रणाम कर चले जाते हैं। गुरुदेव अब पर्णकुटीमें अकेले हैं। गुरुजी नयी कौपीनको एक ओर सावधानीसे रख लेते हैं।)

समीपके बिलसे चूहे निकले और नयी कौपीनको कुतर-कुतर करने लगे। एकाएक संन्यासीका ध्यान उधर गया, तो विक्षुब्ध हो उठे। कितने स्नेहसे भेंटस्वरूप दी हुई चीज है और ये दुष्ट चूहे उसीको काटने लगे!

गुरुदेव—(चिढ़कर क्रोधभरे स्वरमें) नयी कौपीन लिये देर नहीं हुई और दुष्ट चूहोंने उसे निर्ममतासे कुतर-कुतरकर नष्ट करना शुरू कर दिया। बेरहम चूहे कपड़ा नहीं छोड़ते। जब देखो, तब कपड़ेको काटने लगते हैं। कुटियामें तनिक-सा कपड़ा आते ही एक नयी मुसीबत शुरू हो गयी। मैंने शिष्योंसे पहले ही कहा था कि मुझे दूसरी कौपीन नहीं चाहिये। मेरे लिये एक ही यथेष्ट है। मैं मोहके बन्धनमें नहीं बँधना चाहता, पर क्या करूँ? वे बुरी तरह हठ करने लगे, तो उनका मन रखनेके लिये यह कौपीन रख ली थी।

(एक शिष्यका प्रवेश)

गुरुदेव—देखो श्रीधर ! कौपीन लिये देर नहीं हुई कि चूहोंकी नयी मुसीबत शुरू हो गयी। कमबख्त किस बेरहमीसे नयी कौपीनको काट रहे हैं। यह कितनी उपयोगी है, बिल्कुल नयी है, यह बात भी तो मूढ़ नहीं समझते। बस, कुतरे जायँगे···मैंने पहले ही कहा था कि मुझे दूसरी कौपीन-ओपीन नहीं चाहिये। वैरागी साधुको माया-मोहसे क्या काम !

श्रीधर—गुरुदेव ! आप ठीक कहते हैं। सचमुच नयी कौपीनपर ही इन्होंने अपने तीखे दाँत गड़ा दिये हैं। लिये देर नहीं हुई और इन्होंने परेशान करना प्रारम्भ कर दिया···लेकिन······इसे आप फेंक क्यों नहीं देते ?

गुरुदेव—फेंक क्यों नहीं देते ? यह क्या कहा तूने ! अरे फेंक दूँगा, तो हेमेन्द्र और सत्येन्द्रकी प्रेमपूर्वक दी हुई भेंटकी

अवज्ञा जो होगी । वे लोग भला क्या कहेंगे कि गुरुजीने हमारी श्रद्धा और स्नेहकी वस्तुको फेंक दिया ?

श्रीधर–चूहोंकी परेशानी तो भविष्यमें और भी बढ़ती ही जायगी । क्या किया जाय ? एक तरीका है–आप कहें तो कहींसे एक बिल्ली ले आऊँ ।

गुरुदेव–हाँ, हाँ, ठीक है । बिल्लीके डरसे कुटियाके सब चूहे बिलोंमें बैठे रहा करेंगे । बाहर निकलकर वस्त्रोंको कुतरनेकी हिम्मत न होगी । दुष्टोंको भय दिखाकर दबाना चाहिये । अभी जा—एक तगड़ी-सी बिल्ली ले आ । देर न कर जल्दी जा । बिल्ली आ जानेपर फिर ये चूहे कुटियाकी किसी भी चीजको नष्ट न कर सकेंगे । बिलोंमें पड़े सड़ा करेंगे……।

श्रीधर–जो आज्ञा, मैं जल्दी ही बिल्ली लाता हूँ ।

(चला जाता है)

गुरुदेव–(अपने आप) शठको शठसे ही दबाया जा सकता है । ये चूहे बिल्लीसे ही वशमें आयेंगे । इस समय बिल्ली ही इनके दमनका एक उपाय दीखता है ।

(शिष्यका बिल्ली लेकर प्रवेश)

श्रीधर–लीजिये गुरुदेव, आपकी आज्ञा हुई और यह बिल्ली हाजिर है । देखिये, कितनी सुन्दर है यह ! संयोगसे इधर पास ही मिल गयी । यह किसीकी पाली हुई-सी प्रतीत होती है । शायद किसीने अपने घरसे निकाल दी है । नये घरकी तलाशमें घूम रही थी । इसे भी नया सुखदायक घर मिल जायगा और आप भी चूहोंकी परेशानीसे बच जायँगे ।

गुरुदेव–ठीक, ठीक ! बिल्लीको देखते ही कुटियाके सब चूहे भाग खड़े हुए हैं । भला, डरके सामने वे कैसे टिकेंगे ? मेरी सज्जनताका अनुचित लाभ उठा रहे थे अबतक ।

(कुटियाके सब चूहे बिलोंमें घुसे बैठे हैं । बिल्ली कूदती है और प्रेमसे सन्यासीके पाँव चाटती है । अपने कोमल बालोंको उससे रगड़कर ममता प्रकट करती है । गुरुदेव खुशीका अनुभव करते हैं ।)

गुरुदेव–अहह ! इस बिल्लीमें मेरे प्रति कितना स्नेह है ! यह मुझे कितना चाहती है । शरीरसे चिपट-चिपट जाती है । इन अधम कहलानेवाले जीवोंमें भी कितना ममत्व है । यह तो ऐसी लगती है जैसे पूर्वजन्मकी कोई बाल-सहचरी ही हो । यह तो मुझे अपनी-सी जानी-पहचानी लगती है ।

(बिल्ली इधर-उधर अकेली घूमती है । ऐसा लगता है जैसे वह अपने-आपको अकेला अनुभव कर दुखी हो रही हो ।)

एक शिष्य–(भारी मनसे) यह बिल्ली इस कुटियामें अकेलापन-सा अनुभव कर रही है ।

दूसरा शिष्य–यहाँ और कोई—और जीव भी तो मन लगानेको नहीं है । जो चूहे थे, वे डरके मारे बिलोंमें घुस गये हैं ।

पहला शिष्य–कहीं अकेलेपनसे परेशान होकर भाग न जाय । लाइये, इसे बाँध दूँ रस्सीसे ।

(बाँधता है)

अब यह भागकर अन्यत्र जा न सकेगी । चूहे बाहर नहीं निकल सकेंगे । इसके आनेसे दुष्ट चूहोंकी परेशानी मिट गयी । ईश्वरने बिल्ली भी कैसी उपयोगी बनायी है । कोई चूहा बिलसे नहीं निकल सकेगा ।

(पटाक्षेप)

द्वितीय झाँकी

[लगभग एक मास बाद]

(अपनी पर्णकुटीमें विरक्त संन्यासी चिन्ताग्रस्त बैठे हैं । पहले चिन्तामुक्त हो योग-साधन करते थे, पर अब बिल्लीकी गिरती हुई हालतसे परेशान-से हो रहे हैं ।)

संन्यासी–(आप-ही-आप) शिष्योंका भी कैसा ममत्व था मेरे प्रति । मुझे नग्न देख लाख मना करनेपर भी नयी कौपीन ले आये । कौपीनको चूहोंने कुतरना शुरू किया, तो चूहोंसे बचनेके लिये बिल्ली पाल दी । अब यह बिल्ली भूखके मारे दुबली हो रही है । इसे पूरा पेटभर भोजन ही नहीं मिलता । बेचारीकी हड्डियाँ और पसलियाँ निकल आयी हैं । इससे कमजोरीकी वजहसे चला-फिरा नहीं जाता । ऐसे तो यह मर जायगी । हाय ! हाय !! यह तो बड़ा बुरा होगा···पाप हो जायगा । जो प्राणी मुझपर आश्रित है, उसे दुखी नहीं रहना चाहिये ? हाय ! अब बेचारीको कैसे बचाऊँ ? कैसे इसकी प्राण-रक्षा हो ? मैं सारे दिन इस बिल्लीको स्वस्थ रखनेकी बात सोचता रहता हूँ । बिल्लीके लिये यदि दूधका

कोई प्रबन्ध होता, तो यह जरूर बच जाती। भरपेट भोजनसे इसपर मांस आ जाता। पर दूधका प्रबन्ध······कैसे करूँ? मेरी बिल्लीकी प्राणरक्षाके लिये दूध तो चाहिये ही। 'अरे शिष्यो!···अरे शिष्यो···इधर आओ···! यह बिल्ली मर जायगी···इसे किसी तरह बचाना चाहिये···।'

(शिष्य आते हैं)

शिष्य—कहिये गुरुदेव! कैसे याद किया।

संन्यासी—(चिन्तित मुद्रामें) कहें क्या, इस बिल्लीकी हालत नहीं देखते, कैसी दुबली होती जा रही है। भूखके मारे बेचारीकी हड्डियाँ-ही-हड्डियाँ निकल आयी हैं। इसका पेट ही नहीं भर पाता। इसके लिये दूधका कोई प्रबन्ध होना चाहिये।

शिष्य—आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। गुरुदेव! आश्रममें कई धनी लोग गायोंका दान करना चाहते हैं। हमने ही उनसे कह दिया था कि गुरुजी संसारसे विरक्त संन्यासी हैं। उन्हें गायसे क्या सरोकार! अब हम उनसे गायोंका दान स्वीकार कर लेंगे। कई भक्तजन गाय लेकर आज भी आये हैं। हम उनकी भेंट स्वीकार कर लेंगे। बिल्लीके अतिरिक्त सभीको दूध-मक्खन-दहीकी सुविधा हो जायगी।

गुरुदेव—कम्बख्त बिल्लीने मुझे कैसा ममता-मोहमें बाँध लिया है। अब गाय लेनी ही पड़ेगी। (शिष्यसे) अच्छा, जाओ, तुम एक गायकी भेंटको स्वीकार कर लो।

(शिष्य जाता है)

चलो, आश्रममें दूध, मक्खन और दहीकी तो सुविधा हो जायगी। बहुत दिनोंसे अतिथि महाशय भी निराहार ही वापस जाते थे। अब सभीको दूधसे लाभ होगा।

[शिष्य गाय लेकर आता है। पानी पिलाता है और घास डालता है।]

शिष्य—अब बिल्ली भूखी न रहेगी।

तृतीय झाँकी

[दो-तीन मास बीत गये हैं। गाय खूब दूध देती है, जिससे बिल्ली मोटी-तगड़ी हो गयी है। आश्रममें सभीको दूध-मक्खनकी सुविधा हो गयी है। गुरुदेव भी दूध पीकर मजबूत होते जाते हैं; किंतु एक नयी चिन्ताने उन्हें परेशान कर रक्खा है। ममताके बन्धनोंमें वे लिपटते जा रहे हैं।]

गुरुदेव—गाय तो मिली, पर अब कौन रोज-रोज इसके लिये घास काटकर लाये···गोबर साफ करे? मल-मूत्रकी सफाई सिरपर आ पड़ी। भजन, साधन-पूजन, अध्ययन-स्वाध्याय छूटता जाता है। सारा समय बिल्ली और गायकी सेवा-चाकरीमें ही लग रहा है। पहले एक कौपीन थी, उसके धोनेमें तनिक-सा समय लगता था। अब दूसरी कौपीनको धोनेका काम अलग है। चूहोंका भय बना रहता है। चिन्ता रहती है कि कहीं घास, दाना न मिलनेसे गाय भूखी न मर जाय। अजब जंजालमें, माया-मोहमें फँस गया हूँ···घरके काममें ही सारा समय बरबाद हो रहा है, न बिल्ली छूटती है, न गाय। कोई इन दोनोंकी देख-रेख और सेवा-चाकरी करनेवाला मिले, तो मुझे साधन-भजन और ईश्वरचिन्तनके लिये पूर्ववत् समय मिले। यदि कोई इस कामको कर लेता, तो······हाँ; तो मैं स्वाध्याय करता······अध्यात्ममें आगे बढ़ता······किसी नौकरका प्रबन्ध करूँ, तब यह मायाजाल छूटे। (पुकारता है, 'ओ शिष्यो···शिष्यो···')

(दो शिष्य आते हैं)

गुरुदेव—देखो, इस बिल्ली और गायकी सेवा-चाकरीमें तो हमारा सारा समय नष्ट हो जाता है। गायके लिये घास, चारा, दाना, गोबर इत्यादिकी सफाई इत्यादिके लिये किसी सेवककी जरूरत है। कोई इन दोनोंको सँभाल ले, तो हमें साधनविषयक कार्योंके लिये फुरसत मिल सकती है। आजकल तो सारा समय इन दोनोंमें ही खराब हो रहा है। इनका ममता-मोह हमें अध्यात्मचिन्तन नहीं करने दे रहा है।

शिष्य—गुरुदेव! आज्ञा दें!

गुरुदेव—इस बिल्ली और गायके ममता-मोहसे परेशान हूँ बेटा! भजन करते समय इन्हींका ध्यान बार-बार आता रहता है।

शिष्य—क्षमा करें गुरुदेव! ये काम तो गुरुआनीजीके हैं। घरका सारा काम सँभालना औरतोंकी जिम्मेदारी होती है। पुरुष घरके बाहरके काम करता है, स्त्रियाँ गृहिणी कहलाती हैं। घरकी सारी चिन्ताओंसे मुक्तिके लिये कहें तो एक सुशीला गुरुआनीका प्रबन्ध कर दें। फिर वे घरका

भोजन, बिल्ली-गायकी देखरेख, वस्त्रोंको धोने इत्यादिका सारा प्रबन्ध स्वयं कर लिया करेंगी। आपको सम्पूर्ण समय साधनविषयक कार्योंके लिये मिल जाया करेगा······ निर्विघ्न योगसाधन, स्वाध्याय, ग्रन्थ-लेखन, ईश्वरचिन्तन होता रहेगा।

गुरुदेव–(कुछ सोचकर) सुझाव कुछ बुरा नहीं है; किंतु तू कहाँसे गुरुआनी लायेगा ?

शिष्य–(सहर्ष) केवल आपकी आज्ञा मात्र चाहिये। यहाँ किसीकी कोई कमी नहीं है। कई नारियाँ स्वयं यह सेवाकार्य करनेका प्रस्ताव कर चुकी हैं, पर आपके सामने निवेदन करनेकी हिम्मत नहीं हुई थी······कहिये, तो ले आऊँ !

गुरुदेव–(कुछ सोचमें पड़ जाते हैं। चुप रहते हैं)

शिष्य–मैं गुरुदेवके मौनका मतलब समझ गया। जाता हूँ, अभी सेवाकार्यके लिये सुशीला गुरुआनी ले आता हूँ (जाता है)।

गुरुदेव–कितना बुद्धिमान् शिष्य है। अब घरके सारे झंझटोंसे मुक्ति मिल जायगी। वह घरका काम सँभाल लेगी, मैं सारा समय साधनमें दिया करूँगा। चलो, गुरुआनीके आनेसे घरकी चिन्तासे तो छुटकारा मिलेगा।

[शिष्य एक सुन्दर सुशीला नारीको लेकर प्रवेश करता है। नारी आदरसहित प्रणामकर गुरुदेवके चरणोंको स्पर्श करती है।]

नारी–(श्रद्धा और आदरसहित) गुरुदेव ! मेरे धन्य भाग्य जो आपने मुझे इस घरकी सेवा-चाकरीका सुअवसर प्रदान किया है। आजसे मैं आपको समस्त घरकी चिन्ताओंसे मुक्त करती हूँ। समयपर भोजन मिलेगा, बिल्ली और गायकी देखरेख होगी, वस्त्रादि धोये जाते रहेंगे। अब आप निर्विघ्न साधन-भजनका उच्च कार्य पूर्ववत् कर सकेंगे।

गुरुदेव–ठीक-ठीक, तुम इस बिल्ली······इस गायको सँभालो। मैं अध्यात्म-चिन्तन करूँगा······।

शिष्य–गुरुदेव ! अब एक हमारी भी प्रार्थना स्वीकार करें। बहुत दिनोंसे हम सबकी इच्छा है कि धार्मिक पर्यटन करें। भारतके समस्त धर्म-स्थानोंपर जाकर स्नानादिका पुण्यलाभ लें। आश्रमके बाहरके स्थानोंको भी देखें।

गुरुदेव–(सहर्ष) तुमने हमारी बड़ी सेवा की है। पर्याप्त पढ़ भी लिया है। अब तुम धार्मिक यात्रा कर सकते हो। घूम-घूमकर अच्छी तरह ज्ञान-लाभ करो। वापस आनेकी कोई जल्दी मत करना······।

[शिष्य सब चले जाते हैं।]

गुरुदेव–(नारीसे) सँभालो यह घर-द्वार······यह सब कुछ। अब हम ईश्वरचिन्तन करेंगे।

[पटाक्षेप]

चौथी झाँकी

शिष्य कई वर्ष बाद धार्मिक यात्रासे लौटकर गुरुदेवके आश्रममें आते हैं। पर, अरे ! यह क्या ! उस आश्रमका तो कहीं नाम-निशान भी नहीं है। और वह कुटिया कहाँ गयी ? यहाँ तो एक आलीशान बिल्डिंग खड़ी हुई है। न वह पीपलका पेड़ है, न वह घास-फूँसकी झोंपड़ी ! सब कुछ बदल गया है। शिष्य यह परिवर्तन देखकर घबरा रहे हैं कि कहीं हम भूलकर नयी जगह तो नहीं आ गये हैं ! घरसे बाहर कुछ बाल-बच्चे खेल रहे हैं।

शिष्य–(बच्चोंसे) क्यों रे बच्चो ! कुछ वर्ष पहले इधर एक पीपलके पेड़के नीचे एक संन्यासी विरक्त साधु-की कुटिया थी······उनके पास एक बिल्ली थी······एक काली गाय थी······क्या तुम उस संन्यासीके विषयमें कुछ बता सकते हो ?

एक बालक–यहाँ कोई झोपड़ी नहीं है। तुम शायद मार्ग भूल गये हो।

एक कन्या–हमने कोई पीपलका पेड़ नहीं देखा, न कोई विरक्त संन्यासी······।

शिष्य–नहीं, जगह तो वही है······इधर-उधरका वातावरण मैं नहीं भूला हूँ······यह देखो, स्थानकी सीमाएँ मैं पहचानता हूँ······।

[इतनेमें आधुनिक वस्त्रोंमें एक व्यक्ति घरसे बाहर निकलकर आते हैं।]

शिष्य–माफ कीजिये, यहाँ कुछ वर्ष पहले एक विरक्त संन्यासी रहा करते थे। उनकी एक पर्णकुटी थी······। कुटियामें उन्होंने एक बिल्ली पाल रक्खी थी। दूधके लिये एक काली गाय थी······।

संन्यासी–(शिष्यको पहचानकर) अरे, मैं ही तो

वह संन्यासी हूँ और वह पर्णकुटी बदलकर यह पक्का आलीशान मकान बन गया है। ये बच्चे मेरे ही तो हैं। बच्चो ! अपनी मम्मीको बुलाकर लाओ। (बच्चे जाते हैं) तबसे बड़ा परिवर्तन आ गया है। सभी कुछ बदलकर नया जीवन हो गया है। (एक आधुनिक फैशनकी नारी बाहर निकलती है। शिष्य उन्हें प्रणाम करता है।)

ये वे गुरुआनीजी हैं, जिन्हें तुम सेवा-चाकरीके लिये रख गये थे⋯⋯।

नारी—यह देखो, सब कुछ बदल गया है। जंगलसे नगरके सब साधन-ऐश्वर्य, विलासके उपकरण एकत्रित हो गये हैं। कौन इन्हें देखकर कह सकता है कि ये कभी संसारसे विरक्त संन्यासी रहे होंगे ? घर, परिवार, बाल-बच्चे, पत्नी-जमीन, जायदाद सभी कुछ है। गृहस्थके सारे बन्धनोंमें बँधे हुए गृहस्थ बन गये हैं।

शिष्य—तो क्या गुरुदेव ! अब आप पूरे गृहस्थी बन गये हैं ?

संन्यासी—मैं क्या करूँ ? उस नयी कौपीनसे माया-मोह-का चक्र फैलता गया। तनिक-तनिक-सा होते-होते मैं ममताके बन्धनमें बँधता गया। मैं वासनाके कुटिल चक्रमें फँस गया। इस नारीके पदार्पणसे तो गृहस्थी पूरी ही हो गयी⋯⋯और अब ये बाल-बच्चे⋯यह पत्नी⋯यह जमीन-जायदाद⋯सर्वत्र माया और मोहका बन्धन-ही-बन्धन मुझे बाँधे हुए है⋯मैं अनेक सांसारिक चिन्ताओंसे बँधा हुआ हूँ⋯यह छुड़ाये नहीं छूट पा रहे हैं⋯⋯।

शिष्य—हाय रे दुनिया, सांसारिक लोग दुनियाके कुचक्र-से ऊबकर विरक्त-संन्यासी बनते हैं, जंगलोंमें भाग कुटियामें रहते हैं, ईश्वर-भजनके लिये नंगे रहते हैं या एक कौपीन मात्रसे काम चलाते हैं; उधर हमारे गुरुजी एक नयी कौपीनके मोहसे विरक्तसे गृहस्थी बन गये हैं।

गुरुदेव—मोहका बन्धन इसीको तो कहते हैं बेटा ! यही संसार है, जिसकी मायामें समस्त जीव बँधे हुए हैं। *माया ममता ना मिटी, मर मर गये शरीर*⋯⋯।

(पटाक्षेप)

नारायण

(लेखक—पं० श्रीमूलनारायणजी मालवीय)

किसी भी काषाय वस्त्रधारी दण्डी स्वामीको देखकर श्रद्धालु धार्मिकजन नत-मस्तक होकर 'ॐनमो नारायणाय' का उच्चारण करता है। इसके उत्तरमें स्वामीजी केवल 'नारायण' कहकर उसका अभिवादन स्वीकार करते हैं। 'नारायण' शब्दकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें श्रीमद्भागवत महापुराणमें इस प्रकारसे आया है कि 'जब विराट् पुरुष ब्रह्माण्डको फोड़कर निकला, तब अपने निवासस्थानकी इच्छासे उस शुद्धसंकल्प पुरुषने स्वच्छ जलकी रचना की। उसका नाम 'नर' है। जल उसी नरसे उत्पन्न हुआ। नरसे उत्पन्न होनेके कारण जलका नाम 'नार' हुआ। पुरुषने उसी जलको अपना वासस्थान बनाया, इसीसे उस पुरुषका नाम 'नारायण' हुआ।

ऐसे तो 'नारायण' नामके सम्बन्धमें बहुत कुछ पढ़ा जाता है; परंतु मुझे नीचेका यह श्लोक बड़ा सुन्दर लगता है—

यच्च किञ्चिज्जगत् सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा।
अन्तर्बहिश्च तत् सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः॥

इसी सम्बन्धमें सृष्टिनायक ब्रह्माजीने भक्तशिरोमणि समस्त प्राणियोंके कल्याण चाहनेवाले देवर्षि नारदजीसे इस प्रकार कहा है—

नारायणपरा वेदा देवा नारायणाङ्गजाः।
नारायणपरा लोका नारायणपरा मखाः॥
नारायणपरो योगो नारायणपरं तपः।
नारायणपरं ज्ञानं नारायणपरा गतिः॥

ऊपरकी पंक्तियोंका भाव यह है कि सब वेद, सब देवता, सब लोक और सब यज्ञ—'नारायण'से ही उत्पन्न तथा उन्हींकी मूर्ति हैं। योग, तप, ज्ञान और गति सभी 'नारायण' हैं।

भगवान्‌के जितने भी नाम हैं, मङ्गलदायक हैं; किंतु रुचि, श्रद्धा तथा प्रेमके कारण कभी भिन्नता भी हो जाती है। परंतु सच्चे ईश्वरके उपासकका यह अटल सिद्धान्त रहता है—

शिवस्वरूपी शिवभाविताना
हरिस्वरूपी हरिभाविनानाम्।
भक्तानुकम्पार्थगृहीतदेहे
सत्यं शरण्यं शरणं प्रपद्ये॥

जो भक्तपर दया करके देह धारण करते हैं, जो शैवके पास शिव और वैष्णवके पास हरिरूपसे हैं, उन्हीं सत्यरूप शरणागतपालक भगवत्-चरणारविन्दमें हम शरण लेते हैं।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेवने नीचे लिखे इस श्लोकको मुझे एक समय स्मरण कराया था—

केचिद् वदन्ति धनहीनजनो जघन्यः
केचिद् वदन्ति गुणहीनजनो जघन्यः।
व्यासो वदत्यखिलवेदपुराणविज्ञो
नारायणस्मरणहीनजनो जघन्यः॥

किस समय भगवान्‌के कौन-से नामका ध्यान, स्मरण और जप करना चाहिये। इसका स्तोत्रोंमें इस प्रकारसे संग्रह किया गया है—

औषधे चिन्तयेद् विष्णुं भोजने च जनार्दनम्।
शयने पद्मनाभं च विवाहे च प्रजापतिम्॥
युद्धे चक्रधरं देवं प्रवासं च त्रिविक्रमम्।
'नारायणं' तनुत्यागे श्रीधरं प्रियसंगमे॥
दुःस्वप्ने स्मर गोविन्दं संकटे मधुसूदनम्।
कानने नारसिंहं च पावके जलशायिनम्॥
जलमध्ये वराहं च पर्वते रघुनन्दनम्।
गमने वामनं चैव सर्वकार्येषु माधवम्॥

ऊपर आया है कि अन्तिम समयमें 'नारायण'का स्मरण और मुखसे उच्चारण करे। पापी अजामिलकी जब मृत्यु निकट आयी, यमदूतोंने उसे आ घेरा। उसने अपने सबसे छोटे पुत्र, जिसका नाम 'नारायण' था, उसे पुकारा। केवल 'नारायण'के उच्चारणमात्रसे वहाँपर भगवान्‌के पार्षदोंने पधारकर अजामिलको उत्तम गति प्राप्त करायी। तभी तो कहा गया है—

एतेनैव ह्यघोनोऽस्य कृतं स्यादघनिष्कृतम्।
यदा नारायणायेति जगाद चतुरक्षरम्॥
(श्रीमद्भागवत ६।२।८)

जिस समय अजामिलने 'नारायण' इन चार अक्षरोंका उच्चारण किया, उसी समय इतने ही मात्रसे इस पापीके पापका प्रायश्चित्त हो गया।

गज और ग्राहकी लड़ाईकी कथा पढ़ने और सुननेवाले जानते हैं कि जिस समय जलमें गजराज ग्राहसे ग्रसित हो अन्तिम साँसें ले रहा था, अपना बल, कुटुम्बियों और साथियोंका पुरुषार्थ उसके सहायक नहीं हो रहे थे, उस समय उसने भगवान् 'नारायण'की इस प्रकारसे स्तुति की—

यः कश्चनेशो बलिनोऽन्तकोरगात्
प्रचण्डवेगादभिधावतो भृशम्।
भीतं प्रपन्नं परिपाति यद्भया-
न्मृत्युः प्रधावत्यरणं तमीमहि॥
(श्रीमद्भागवत ८।२।३३)

'ईश्वर ही सबसे बढ़कर बली हैं। प्रचण्ड वेगसे दौड़ रहे कालरूप कराल सर्पके भयसे भीत और विपत्तिमें पड़े हुए व्यक्तिकी जो रक्षा करते हैं एवं जिनके भयसे मृत्यु अपने कार्यमें प्रवृत्त है, मैं उन ईश्वरके ही शरणागत हूँ।' गजराज इस प्रकार भगवान्‌की स्तुति कर ही रहा था कि उसे उसी समय आकाशमें गरुडकी पीठपर शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म हाथोंमें धारण किये हुए गलेमें सुन्दर वैजयन्ती माला पहने पीताम्बर धारण किये भगवान् विष्णु दिखायी दिये। सूँड़में कमल-पुष्प लेकर गद्‌गद कण्ठसे वह चिल्ला उठा—

'नारायणाखिलगुरो भगवन्नमस्ते।'

'हे नारायण! हे सबके गुरु!! आपको नमस्कार है।' गजकी टेर सुनते ही भगवान्‌ने वहाँ प्रकट होकर ग्राहको मारकर गजको उबार लिया।

भगवत्-प्रेमीकी तो यह दृढ़ धारणा रहती है कि विपत्ति विपत्ति नहीं, सम्पदा सम्पदा नहीं। भगवान् विष्णुका विस्मरण विपत्ति है और 'नारायण' का स्मरण ही सम्पत्ति है।

विपदो नैव विपदः सम्पदो नैव सम्पदः।
विपद् विस्मरणे विष्णोः सम्पन्नारायणस्मृतिः॥

शरीर जर्जर हो उठा है, व्याधिसे ग्रस्त है, ऐसे समयमें ओषधि श्रीगङ्गाजीका जल है और वैद्य 'नारायण' हरि हैं।

शरीरे जर्जरीभूते व्याधिग्रस्ते कलेवरे।
औषधं जाह्नवीतोयं वैद्यो नारायणो हरिः॥

किसी भक्तका नीचे लिखा हुआ यह भाव है—

नारायणो नाम नरो नराणां
प्रसिद्धचौरः कथितः पृथिव्याम्।
अनेकजन्मार्जितपापसंचयं
हरत्यशेषं स्मरतां सदैव॥

'नरोंमें 'नारायण' नामका एक पुरुषविशेष है, जो संसारमें प्रसिद्ध चोर कहा जाता है; क्योंकि वह स्मरण करते

ही अनेक जन्मोंकी कमायी हुई सारी पापराशिको सदा ही हरण कर लेता है।'

प्रातः, रात्रि, संध्या अथवा मध्याह्न आदिमें भगवान् नारायणका स्मरण करनेवाला मनुष्य उसी समय अपने पापोंका क्षय कर लेता है।

प्रातर्निशि तथा सन्ध्यामध्याह्नादिषु संस्मरन् ।
नारायणमवाप्नोति सद्यः पापक्षयं नरः ॥

उपर्युक्त जितने भी 'नारायण' के नामके महत्त्वके श्लोक उद्धृत किये गये हैं, वे सब-के-सब सद्ग्रन्थोंसे लिये गये हैं, जिसकी सत्यतामें संदेह करना अपनी ही कमजोरी मानी जायगी। वर्तमान समयमें महामना मालवीयजी महाराज धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक दृष्टिसे अपना अच्छा स्थान रखते थे। अपने जीवनकालमें आप एक बार गोरखपुरके गीताप्रेसमें परम श्रद्धालु भक्त श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके अतिथि हुए। महामनाजीने बड़े प्रेमसे पोद्दारजीसे कहा कि "आज आपको हम कुछ देना चाहते हैं। यह हमारी माँका दिया हुआ अमोघ वरदान है। आप जब कभी कहींके लिये यात्रा करें, चार-पाँच बार 'नारायण' नामका उच्चारण कर लें। आप सफल होंगे। हमारी माँने बचपनमें हमसे कहा था 'बेटा! कहीं भी जाया करो, तब चार-पाँच बार 'नारायण' नाम ले लिया करो, तुम सफल होओगे।' तबसे हमारे जीवनमें हम जब-जब भूले हैं, तब-तब सफल नहीं हुए, नहीं तो हमारा वर्षोंका अनुभव है, हमें सदा ही सफलता मिली है।" बड़ी श्रद्धासे पोद्दारजीने आपकी आज्ञाको स्वीकार किया और तबसे वे ही नहीं, उनके घरभरके लोग इसका प्रायः पालन करते हैं। मेरी स्मरण-शक्ति अगर धोखा नहीं देती तो उपर्युक्त बातें पोद्दारजीकी कलमसे निकली हुई हैं।

मेरे कुछ मित्र प्रत्येक रविवारको प्रयागमें श्रीलक्ष्मी-नारायणजीके मन्दिरमें एकत्रित होते हैं। रामायण, गीता इत्यादि-की समाप्तिके बाद 'नारायण' की ध्वनि लगायी जाती है। उस समय अनिर्वचनीय आनन्द आता है। मुझे भगवान्‌के इस नामसे क्या लाभ हुआ, इसको बतानेकी आवश्यकता नहीं। वैद्य-जीवनके रचयिता लोलिम्बराजजीने अपनी पत्नीसे प्रेम-पूर्वक कहा था—

नारायणं भजत रे जठरेण युक्ता
नारायणं भजत रे पवनेन युक्ताः।
नारायणं भजत रे भवभीतियुक्ता
नारायणात्परतरं नहि किंचिदस्ति ॥

यदि कोई उदर-रोगसे पीड़ित है तो उसे 'नारायण' चूर्णका सेवन करना चाहिये। वातरोगसे दुखित है तो 'नारायण' तैलका व्यवहार करे। संसारसे घबराया हो, भय-भीत हो तो उसे 'नारायण'का भजन करना चाहिये। नारायणसे बढ़कर और कुछ भी नहीं है।

नारायण-नाम-महिमा

नारायण शुभ नाम दिव्य है मंगलमय कल्याणाऽधार।
आर्ति-विपत्ति-ताप-अघ-तम-हर दिव्य सुख-सुधा-पारावार ॥
हो यदि कहीं, किसी भी कारण, शुभ नारायण नामोच्चार।
हरि-पार्षद आयें, हो भीत भगें यमदूत भीषणाकार ॥
नारायण शुभ नाम दीन-जन-आश्रय मधुमय मोक्षद्वार।
भुक्ति-मुक्ति-शुचि शान्ति नित्य-पर-धाम सुदायक सहज उदार ॥
भाव-कुभाव-अनख, आतुरता-भय-संकेत-हास-मनुहार।
किसी हेतु 'नारायण' कहनेपर हो संकटसे उद्धार ॥

श्रीबगलामुखी देवीकी उपासना

(प्रेषक—ब्रह्मचारी श्रीपागलानन्दजी उपनाम '० श्रीयज्ञदत्तजी शर्मा 'वानप्रस्थी' वैद्य)

[गताङ्क पृष्ठ ११६३ से आगे]

कलश-स्थापन

इसके बाद अपने वामभागमें त्रिकोण बनाकर उसे गोलाकार रेखासे घेर दे। फिर उसे भी चतुरस्र (चौकोर) रेखासे घेरकर मण्डल बनाये। तत्पश्चात् **'ॐ मं मण्डलाय नमः'** इस मन्त्रसे उस मण्डलकी पूजा करके वहाँ त्रिपादिका (तिपाई) रक्खे तथा **'मं दशकलात्मने वह्निमण्डलाय श्रीबगलामुख्याः कलशाधाराय नमः'** इस मन्त्रसे त्रिपादिका-का पूजन करके **'अस्त्राय फट्'** इससे पात्रको धोकर त्रिपादिकाके ऊपर रक्खे। तदनन्तर **'ॐ अं द्वादशकलात्मने अर्कमण्डलाय श्रीबगलामुख्याः कलशपात्राय नमः'** इस मन्त्रसे उस पात्रका पूजन करनेके पश्चात् **ॐ अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं ळं क्षं** तथा मूल-मन्त्रका उच्चारण करते हुए पहले उस पात्रमें जल भरे तथा निम्नाङ्कित मन्त्रको पढ़कर उस कलश-जलका पूजन करे—

ब्रह्माण्डोदरसम्भूतमशेषरससम्भृतम्।
आपूरितं महाशुद्धं दिव्यामृतं कुरुष्व मे॥

'यह ब्रह्माण्डोदरसे सम्भूत, विशेष रससे युक्त एवं परम पवित्र जल इस कलशमें भरा गया है। हे चन्द्रदेव! तुम मेरे इस कलश-जलको दिव्य अमृतमय बना दो।'

'ॐ षोडशकलात्मने चन्द्रमण्डलाय श्रीबगलामुख्याः कलशामृताय नमः' इस प्रकार जलकी अर्चना करके उसमें आठ प्रकारके गन्ध डाले। तदनन्तर—

ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् संनिधिं कुरु॥

—इस मन्त्रको पढ़कर अङ्कुश मुद्राद्वारा तीर्थोंका आवाहन करके एकादश दोषोंका निस्सारण करे। उसकी विधि इस प्रकार है—

कलशके चारों ओर **'ॐ ह् स् ख् फ्रें पथिकदेवताभ्यो हुँ फट् स्वाहा नमः'** इस मन्त्रसे पथिक-देवताओंका पूजन करे। इसके बाद पूर्ववर्तिनी पूर्वदिशासे आरम्भ करके प्रदक्षिणक्रमसे दश दिशाओंमें दस चाण्डालिनी-जनोंकी पूजा करे। पूजाके मन्त्र निम्नाङ्कित हैं—

१—**ॐ ह्स्ख्फ्रें ग्रामचाण्डालिनि हुं फट् स्वाहा नमः।**
२—**ॐ ह्स्ख्फ्रें क्रोधचाण्डालिनि हुं फट् स्वाहा नमः।**
३—**ॐ ह्स्ख्फ्रें दृष्टिचाण्डालिनि हुं फट् स्वाहा नमः।**
४—**ॐ ह्स्ख्फ्रें स्पर्शचाण्डालिनि हुं फट् स्वाहा नमः।**
५—**ॐ ह्स्ख्फ्रें सृष्टिचाण्डालिनि हुं फट् स्वाहा नमः।**
६—**ॐ ह्स्ख्फ्रें घटचाण्डालिनि हुं फट् स्वाहा नमः।**
७—**ॐ ह्स्ख्फ्रें तपनवेधचाण्डालिनि हुं फट् स्वाहा नमः।**
८—**ॐ ह्स्ख्फ्रें निन्दाचाण्डालिनि हुं फट् स्वाहा नमः।**
९—**ॐ ह्स्ख्फ्रें सर्वजनदृष्टिस्पर्शदोषचाण्डालिनि हुं फट् स्वाहा नमः।**
१०—**ॐ ह्स्ख्फ्रें पशुपाशचाण्डालिनि हुं फट् स्वाहा नमः।**

पथिकदेवता तथा दश चाण्डालिनी-समुदाय—कुल ग्यारह दोष-रूप हैं। इनके पूजनसे ये उस स्थानको छोड़कर हट जाते हैं। इस प्रकार इन ग्यारह दोषोंका निस्सारण करके **'ॐ क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं क्रः विकारदोषिणि अस्य विकारान् हन् हन् स्वाहा'** इस मन्त्रसे मध्यभागमें पूजन करके निम्नाङ्कित पंद्रह ऋचाओंसे कलशको अभिमन्त्रित करे। वे ऋचाएँ इस प्रकार हैं—

१—**ॐ स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोमधारया इन्द्राय पातवे सुतः।**

२—**ॐ रक्षोहा विश्वचर्षणिरभियोनिमयोहतम्। द्रोणा-सधस्थमासदत्।**

३—**ॐ वरिवोधा तमो भ भव मंहिष्ठो वृत्रहं तमः। पर्षिराधो मघोनाम्।**

४—**ॐ अभ्यर्ष महानां देवानां वीतिमन्धसा। अभिवाजमुतः श्रवः।**

५—**ॐ त्वामच्छा चरामसि तदिदर्थं दिवे दिवे। इन्द्रो त्वेन आशसः।**

६—**ॐ विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु। आसिञ्चतु प्रजापतिः। धाता गर्भं दधातु।**

७—ॐ गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि पृथुष्टुके । गर्भं ते अश्विनौ देवा वाधत्तां पुष्करस्रजौ ।

८—ॐ हिरण्यमयी अरणीयं निर्मंथतो अश्विना ।

९—ॐ ऋतं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूनवे । त्रिभिष्टं देवस्य सवितुर्वर्षिष्ठैः सोमधामभिः । अग्ने दक्ष पुनीहि माम् ।

१०—ॐ पुनन्तु मां देवजनाः पुनन्तु वसवो धिया । विश्वे देवा पुनीहि मां जातवेदः पुनीहि माम् ।

११—ॐप्रप्यायस्व प्रस्पंदस्व सोम विश्वेभिरंशुभिः । देवेभ्य उत्तमं हविः ॥

१२—ॐ इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोम सूंचता । परुष्ण्या, असिक्न्या, मरुद्विधे वितस्तियार्जकीये श्रणुह्या सुषोमया ।

१३—ॐ सितासिते सरिते पत्रसंगमे तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति । ये वै तन्वां विसृजन्ति धीरास्ते जनासोऽमृतत्वं भजन्ते ॥

१४—ॐ श्रोणमेकमुदकं गाम वाजतिं मांसमेकः पिंशति सूत्रया भृशम् ।

१५—ॐ आनिमुचः शक्रदेवो आभरत्किंस्वित् पुत्रेभ्यः । पितरानुपावतु ॥

इस प्रकार इन पंद्रह ऋचाओंसे एक बार कलशका अभिमन्त्रण करनेके पश्चात्—

ॐ हां हीं हूं हैं हौं हः अमृते अमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृतवर्षिणि अमृतस्वरूपिण्यमृतं स्रावय स्रावय शुक्रशापात् सुधां मोचय मोचय मोचिन्यै नमः ।

—इस मन्त्रको पढ़ते हुए मोचिकाद्वारा एक बार अभिमन्त्रित करके 'ॐ हीं जूं सः स्वाहा' इस मन्त्रसे पुनः आठ बार अभिमन्त्रित करे । इसके बाद मध्यभागमें अकथ चक्रमय तीन रेखाओंसे युक्त मण्डलकी भावना करके उसके बीचमें 'ह' और 'क्ष'का चिन्तन करे । फिर कलशके मध्य भागमें और उसके चारों ओरकी आठ दिशाओंमें नौ मिथुनों (दम्पतियों) की पूजा करे । सबसे पहले आनन्दभैरव और आनन्दभैरवीकी पूजा करनी चाहिये ।

१- भैरवका ध्यान

सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम् ।
अष्टादशभुजं देवं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ॥
अमृतार्णवमध्यस्थं ब्रह्मपद्मोपरिस्थितम् ।
वृषारूढं नीलकण्ठं सर्वाभरणभूषितम् ॥
कपालखट्वाङ्गधरं घण्टाडमरुवादिनम् ।
पाशाङ्कुशधरं देवं गदापुस्तकधारिणम् ॥
खड्गखेटकपट्टीशमुद्गरं शूलदण्डकम् ।
विचित्रखेटकं मुण्डं वरदाभयपाणिकम् ।
लोहितं देवदेवेशं भावयेत् साधकोत्तमः ॥

श्रेष्ठ साधक लोहितवर्ण देवदेवेश्वर आनन्दभैरवका इस प्रकार चिन्तन करे । वे करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी, कोटि चन्द्रमाओंके समान अत्यन्त शीतल, अठारह भुजाओंसे मण्डित, पाँच मुखोंसे युक्त तथा प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्रोंसे सुशोभित हैं । सुधासागरके मध्यभागमें स्थित हैं । ब्रह्म-कमलके ऊपर विराजमान हैं । वृषभ उनका वाहन है । उनके कण्ठभागमें नील चिह्न है । सब प्रकारके आभूषण उनकी शोभा बढ़ाते हैं । उनके अठारह हाथोंमें क्रमशः कपाल, खट्वाङ्ग, घण्टा, डमरू, पाश, अङ्कुश, गदा, पुस्तक, खड्ग, खेटक, पट्टिश, मुद्गर, शूल, दण्ड, विचित्र खेटक, मुण्ड, वरदमुद्रा तथा अभयमुद्रा हैं ।

इस प्रकार ध्यान करके '**सहक्षयलवरयूम् आनन्दभैरवाय वौषट्**' इस मन्त्रसे तीन बार भैरवकी पूजा करके आनन्दभैरवीका ध्यान करे ।

भैरवीका ध्यान

भावयेच सुधादेवीं चन्द्रकोट्ययुतप्रभाम् ।
हिमकुन्देन्दुधवलां पञ्चवक्त्रां त्रिलोचनाम् ॥
अष्टादशभुजैर्युक्तां सर्वानन्दकरोद्यताम् ।
प्रहसन्तीं विशालाक्षीं देवदेवस्य सन्मुखीम् ॥

'आनन्दभैरवीका एक नाम सुधादेवी है । उनके स्वरूपका इस प्रकार चिन्तन करे । अयुत कोटि चन्द्रमाओंके समान कान्तिमती हैं । हिम, कुन्द तथा इन्दुके समान धवल वर्णा हैं । उनके पाँच मुख और प्रत्येक मुख-मण्डलमें तीन-तीन नेत्र हैं, वे अठारह भुजाओंसे सुशोभित हैं । उनके हाथ सबको आनन्दित करनेके लिये उठे रहते हैं । वे विशाल-लोचना देवी देवदेव आनन्दभैरवके सामने हँसती हुई खड़ी हैं ।

इस प्रकार ध्यान करके '**सहक्षमलवरयीम्, आनन्दभैरव्यै वषट् ॥ आनन्दभैरवीं श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि ।**'

—यों कहकर देवीका पूजन और तर्पण करे। यही क्रम आगेके सभी मिथुनोंकी पूजामें समझना चाहिये।

२—ॐ सुरानन्दभैरवाय वौषट् ॥
ॐ सुरानन्दभैरव्यै वषट् ॥
३—ॐ अमृतानन्दभैरवाय वौषट् ॥
ॐ अमृतानन्दभैरव्यै वषट् ॥
४—ॐ तरुणानन्दभैरवाय वौषट् ॥
ॐ तरुणानन्दभैरव्यै वषट् ॥
५—उन्मनानन्दभैरवाय वौषट् ॥
ॐ उन्मनानन्दभैरव्यै वषट् ॥
६—ॐ ज्ञानानन्दभैरवाय वौषट् ॥
ॐ ज्ञानानन्दभैरव्यै वषट् ॥
७—ॐ मुक्तानन्दभैरवाय वौषट् ॥
ॐ मुक्तानन्दभैरव्यै वषट् ॥
८—ॐ परमानन्दभैरवाय वौषट् ॥
ॐ परमानन्दभैरव्यै वषट् ॥
९—ॐ कालभैरवाय वौषट् ॥
ॐ कालभैरव्यै वषट् ॥

इस प्रकार नौ भैरव-मिथुनोंका पूजन तथा संतर्पण करके मूल मन्त्रसे कलशकी ओर देखते हुए कुशोंद्वारा संताड़न एवं कवच-मन्त्रसे अभ्युक्षण करके इस कलशमें चन्द्र-मण्डलीय अमृत है—ऐसी भावना करे। तत्पश्चात् धेनुमुद्राद्वारा अमृतीकरण करके कवच-मन्त्रसे उसको अवगुण्ठित करे। फिर परमीकरणपूर्वक देवीका ध्यान करके उनका आवाहन करे। तदनन्तर मूलमन्त्रसे आठ बार उस कलशको अभिमन्त्रित करके **'ॐ नमो भगवति ग्रामेश्वरि वारुणि जलमूर्ते ऊर्ध्वबिन्दुग्राहिणि महालक्ष्मीश्वरि परमधामपरमाकाशभासुरि सोमसूर्याग्निभक्षिण्यागच्छागच्छान्तरा विशस्व भोगद्रव्यं गृह्ण गृह्ण स्वाहा।'** इस मन्त्रसे कलशमेंसे एक बूँद जल ऊपरकी ओर उछाल दे। इसके बाद कलशको दूसरे पात्रसे ढककर उसके ऊपर उद्धरणपात्र (जल निकालनेका पात्र) रखकर **'ॐ अमोघायै नमः', 'ॐ सूक्ष्मायै नमः', 'ॐ आनन्दायै नमः' 'ॐ शान्त्यै नमः'** इन मन्त्रोंद्वारा अमोघा आदि चार शक्तियोंका बायें हाथसे पूजन करके कलशसे बाहर पूजाके पश्चात् आच्छादित कर दे। इस प्रकार कलशस्थापनकी विधि पूरी हुई।

सामान्यार्घ्य-स्थापनविधि

कलशसे दक्षिण सामान्य अर्घ्यपात्र स्थापित करे। पहले बिन्दु, त्रिकोण, गोलरेखा तथा चतुरस्र (चौकोर) रेखासे युक्त मण्डल बनाये। यथा—
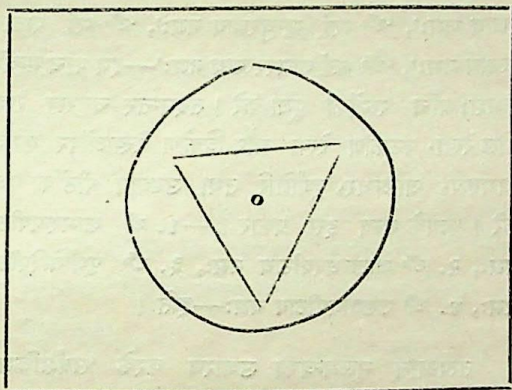
तत्पश्चात् **'मं मण्डलाय नमः'** इस मन्त्रसे अङ्कित मण्डलकी पूजा करके **'अस्त्राय फट्'** इस मन्त्रसे प्रक्षालित की गयी त्रिपादिकाको **'त्रिपादिकायै नमः'**—यों कहते हुए उस मण्डलमें रक्खे। तदनन्तर **'मं दशकलात्मने वह्निमण्डलाय सामान्यार्घ्याधाराय नमः'** इससे त्रिपादिकाका पूजन करके **'फट्'** इस मन्त्रसे शङ्खको धोकर त्रिपादिकाके ऊपर रक्खे तथा रखते समय **'नमः'** इस पदका उच्चारण करे। तदनन्तर **'अं द्वादशकलात्मने सूर्यमण्डलाय सामान्यार्घ्यपात्राय नमः।'** इस मन्त्रसे उक्त शङ्खकी पूजा करे। फिर मूल मन्त्रका उच्चारण करके मातृकामन्त्रद्वारा उस शङ्खको शुद्ध जलसे भरे। तत्पश्चात् **'ॐ षोडशकलात्मने चन्द्रमण्डलाय सामान्यार्घ्याय नमः'** इस मन्त्रसे पूजन करके **'गङ्गे च यमुने चैव'** इत्यादि श्लोकको पढ़ते हुए तीर्थोंका आवाहन करे। फिर उस शङ्ख-जलमें गन्धाष्टक छोड़कर उसमें देवीका आवाहन करे और गन्धाक्षतसे पूजन करके धेनु, मत्स्य एवं कुम्भ-मुद्राओंका प्रदर्शन करे।

विशेषार्घ्यस्थापन-विधि

अपने और श्रीयन्त्रके बीचमें अष्टगन्धसे भूमिका लेपन करे। फिर उसमें बिन्दु, त्रिकोण, षट्कोण और चतुरस्र रेखायुक्त मण्डल बनाकर—**'श्रीपरदेवतायाः विशेषार्घ्याधारमण्डलाय नमः'** इस मन्त्रसे उसका पूजन करे। तदनन्तर मूल मन्त्रके अन्तमें **'नमः'** पद जोड़कर उसके द्वारा त्रिकोणके

मध्यभागका पूजन करे। इसके बाद त्रिकोणके अग्रकोणपर प्रथमभागमें एक बार, वामभागमें दो बार और दक्षिण भागमें तीन बार त्रिकोणका पूजन करके षट्कोणकी पूजा करे। अपने सामनेकी दिशासे लेकर चारों दिशाओंमें तथा मध्यभागमें प्रदक्षिणक्रमसे **'ॐ ग्लूं गगनरत्नाय नमः', 'ॐ स्लूं स्वर्गरत्नाय नमः', 'ॐ म्लूं मृत्युरत्नाय नमः', 'ॐ प्लूं पातालरत्नाय नमः', 'ॐ न्लूं नागररत्नाय नमः'**—इन पाँच मन्त्रोंसे क्रमशः पाँच रत्नोंकी पूजा करे। तदनन्तर चतुरस्र रेखा, गोल रेखा, षट्कोण रेखा और त्रिकोण रेखाओंपर क्रमशः कामरूप, जालन्धर, पूर्णगिरि तथा उड्यान पीठोंका पूजन करे। पूजाके मन्त्र इस प्रकार हैं—**१. ॐ कामरूपपीठाय नमः, २. ॐ जालन्धरपीठाय नमः, ३. ॐ पूर्णगिरिपीठाय नमः, ४. ॐ उड्यानपीठाय नमः**—इति।

तत्पश्चात् मूलमन्त्रका उच्चारण करके **'सर्वशक्तिमयश्रीपादुकापीठचतुष्टयात्मकविशेषार्घ्यमण्डलाय नमः'** इस मन्त्रसे मण्डलकी पूजा करे। फिर मूल मन्त्रसे धोये गये आधार (त्रिपादिका आदि) को हाथमें लेकर **'श्रीमत्परदेवतायाः विशेषार्घ्याधारं स्थापयामि'** यों कहकर स्थापित करे। तदनन्तर पहले मूल मन्त्रका उच्चारण करके **'ॐ मं वह्निमण्डलाय धर्मप्रदाय दशकलात्मने श्रीमत्परदेवताया विशेषार्घ्यपात्राधाराय नमः'** इस मन्त्रसे आधारकी पूजा करके उसके ऊपर अपने सामनेकी दिशासे प्रदक्षिणक्रमपूर्वक अग्निकी दशकलाओंका **'अग्नेर्दशकला इहागच्छत'** यों कहकर आवाहन-पूजन करे। पूजनके मन्त्र इस प्रकार हैं—

१. यं धूम्रार्चिषे नमः। २. रं ऊष्मायै नमः। ३. लं ज्वलिन्यै नमः। ४. वं ज्वालिन्यै नमः। ५. शं विस्फुलिङ्गिन्यै नमः। ६. षं सुश्रियै नमः। ७. सं स्वरूपायै नमः। ८. हं कपिलायै नमः। ९. ळं हव्यवाहायै नमः। १०. क्षं कव्यवाहायै नमः।

इस प्रकार पूजन करके सुवर्ण आदिसे निर्मित अर्घ्यपात्रको अस्त्र-मन्त्रसे प्रक्षालित करके धूपसे धूपित करे। फिर **'श्रीमत्परदेवताया विशेषार्घ्यपात्रं स्थापयामि'** यों कहकर स्थापित करे। इसके बाद मूलमन्त्रके उच्चारणपूर्वक **'अं अर्कमण्डलायार्थप्रदाय दशकलात्मने श्रीमत्परदेवतायाः विशेषार्घ्यपात्राय नमः।'** इस मन्त्रसे उक्त विशेषार्घ्यपात्रकी पूजा करे। फिर उसमें सूर्यकी बारह कलाओंका—**'सूर्यस्य द्वादशकला इहागच्छत'** यों कहकर आवाहन करे और अपने सामनेकी दिशासे आरम्भ करके गोलाकार प्रदक्षिणक्रमसे इन कलाओंका पूजन करे। इनके पूजनके मन्त्र इस प्रकार हैं—**१. कं भं तपिन्यै नमः। २. खं बं तापिन्यै नमः। ३. गं फं धूम्रायै नमः। ४. घं पं मरीच्यै नमः। ५. ङं नं ज्वालिन्यै नमः। ६. चं धं रुच्यै नमः। ७. छं दं सुषुम्णायै नमः। ८. जं थं भोगदायै नमः। ९. झं तं विश्वायै नमः। १०. ञं णं बोधिन्यै नमः। ११. टं ढं धारिण्यै नमः। १२. ठं डं क्षमायै नमः। इति।**

इन मन्त्रोंसे पूजन करनेके पश्चात् कलशमें स्थित अमृतको उद्धरणपात्रसे निकालकर उक्त अर्घ्यपात्रको भरे। भरते समय मूलमन्त्रका उच्चारण करके विलोम-क्रमसे मातृका-मन्त्रोंका भी उच्चारण करे।

यथा—

क्षं ळं हं सं षं शं वं लं रं यं मं भं बं फं पं नं धं दं थं तं णं ढं डं ठं टं ञं झं जं छं चं ङं घं गं खं कं अः अं औं ओं ऐं एं ॡं ऌं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं। इति—

इस प्रकार उस पात्रको भरकर उसमें भी गन्ध आदिका क्षेपण करे। इसके बाद 'सौः' इस बीज मन्त्रके उच्चारणपूर्वक मालिनी मुद्रासे देखते हुए मूल मन्त्रके उच्चारणपूर्वक—**'ॐ सोममण्डलाय कामप्रदाय षोडशकलात्मने श्रीपरदेवतायै विशेषार्घ्यमृताय नमः।'** इस मन्त्रसे अर्घ्यपात्रस्थ जलके भीतर पूजनोपचार चढ़ाये। तत्पश्चात् पूर्वोक्त मण्डलकी भावना करके पहलेकी ही भाँति पञ्चरत्नान्त पूजन करे। यथा—

बगलामुखीके मूल मन्त्रके अन्तमें **'नमः'** पद जोड़कर उसीसे त्रिकोणके मध्यभागका पूजन करे। फिर त्रिकोणके अग्रकोणादि कोणत्रयपर प्रदक्षिणक्रमसे पूजन करे। मूलमन्त्रके तीन खण्ड करके प्रथम खण्डसे प्रथम कोणका, द्वितीय खण्डसे द्वितीय कोणका तथा तृतीय खण्डसे तृतीय कोणका पूजन करना चाहिये। फिर षडङ्ग मन्त्रसे षट्कोणकी पूजाके पश्चात् मातृका-मन्त्रोंद्वारा मण्डलाकार रेखाका पूजन करे। इसके बाद चतुरस्र रेखापर अपने सामनेसे आरम्भ करके प्रदक्षिणक्रमसे चारों दिशाओंमें तथा मध्यभागमें भी पञ्चरत्नोंकी पूजा करे। पूजाके मन्त्र इस प्रकार हैं—

१—ॐ ग्लूं गगनरत्नाय नमः। २—ॐ स्लूं स्वर्गरत्नाय नमः। ३—ॐ म्लूं मृत्युरत्नाय नमः। ४—ॐ प्लूं पातालरत्नाय नमः ५—ॐ न्लूं नागररत्नाय नमः। इति—

इस प्रकार पञ्चरत्न-पूजन करके वहाँ—**'सोमस्य षोडश कला इहागच्छत'** —यों कहकर सोमकी षोडश कलाओंका आवाहन करे और नाममन्त्रोंसे उसकी पूजा सम्पादित करे। वे मन्त्र इस प्रकार हैं—

१–अं अमृतायै नमः। २–आं मानदायै नमः। ३–इं पूषायै नमः। ४–ईं तुष्ट्यै नमः। ५–उं पुष्ट्यै नमः। ६–ऊं रत्यै नमः। ७–ऋं धृत्यै नमः। ८–ॠं शशिन्यै नमः। ९–ऌं चण्डिकायै नमः। १०–ॡं कान्त्यै नमः। ११–एं ज्योत्स्नायै नमः। १२–ऐं श्रियै नमः। १३–ओं प्रीत्यै नमः। १४–औं अङ्गदायै नमः। १५-अं पूर्णायै नमः। १६–अः पूर्णामृतायै नमः। इति॥

इस प्रकार पूजन करके त्रिकोणकी पूर्ववर्तिनी रेखापर **'अं' 'आं'**—इत्यादि क्रमसे सम्पूर्ण स्वरोंको लिखकर दक्षिण रेखापर **कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं**—यों लिखकर उत्तर रेखापर 'थ' से लेकर 'स' तक **'थं दं धं'** इत्यादि रूपसे लिखे। तदनन्तर मध्यस्थ बिन्दुमें कामकला अङ्कित करके उसके दोनों पार्श्वोंमें क्रमशः 'हं' और 'क्षं' लिखे। फिर उसके पृष्ठ भागमें 'ल'कार तथा उसके पार्श्व-भागोंमें 'ह' और 'स' अक्षरोंका चिन्तन करके पुष्प और अक्षतयुक्त हाथसे योनिमुद्रा बाँधकर श्रीगुरुके उपदेशके अनुसार मूलाधारसे कुण्डलिनीको उठाये तथा षट्चक्र-भेदनके क्रमसे सुषुम्णा-मार्गसे ब्रह्मरन्ध्रमें स्थित चिन्मय चन्द्रमण्डलतक ले जाय। तदनन्तर मूलमन्त्रका उच्चारण करके निम्नाङ्कित मन्त्रका पाठ करे।

ब्रह्माण्डखण्डसम्भूतमशेषरससम्भृतम्।
आपूरितं महापात्रं पीयूषरसमावहम्॥

ऐं ब्लूं ओं जूं सः अमृते अमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृत-वर्षिणि अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा।

—यों कहकर उस अर्घ्यामृतमें पुष्प और अक्षत डाले और इस क्रियाद्वारा उसको ब्रह्मरन्ध्रमण्डलसे भरती हुई अमृतधाराके साथ संयुक्त करे। फिर वं इस बीजका उच्चारण करके धेनु-मुद्रा दिखाकर **'ॐ ह्रीं हं सः सोऽहं स्वाहा'** इस अष्टाक्षर मन्त्रसे तीन बार अभिमन्त्रित करे। पुनः उक्त मन्त्रका उच्चारण करके **'आत्मशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि'** यों कहकर उसका पूजन करना चाहिये। तदनन्तर प्रणवसे पुनः तीन बार अभिमन्त्रित करके श्रीगुरुपादुकासे भी तीन बार अभिमन्त्रित करे। फिर उसके द्वारा पूजन करके **'ह स क्ष म ल व र यूम् आनन्दभैरवाय वौषट्।'** इस मन्त्रसे तीन बार अभिमन्त्रित करे। फिर पूर्ववत् पूजन करके **'स ह क्ष म ल व र यीम् आनन्दभैरव्यै वषट्'** इस मन्त्रसे पुनः तीन बार अभिमन्त्रण और पूजन करके **'ह्सौं वरुणाय नमः। वरुण-श्रीपादुकां पूजयामि। स्हौं वारुण्यै देव्यै नमः। वारुणीदेवीश्रीपादुकां पूजयामि'**—इन मन्त्रोंसे पूर्ववत् तीन बार अभिमन्त्रण और पूजन करे। तदनन्तर सृष्टि आदि दस कलाओंका आवाहन करके—

ॐ हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्॥

(कठ० २।२।२)

इस ऋचासे एक बार अभिमन्त्रितकर पुनः उक्त मन्त्रका उच्चारण करके **'ब्रह्मणे नमः'** इस मन्त्रसे पूजन करे। तत्पश्चात्—

कं सृष्ट्यै नमः। खं ऋद्ध्यै नमः। गं स्मृत्यै नमः। घं मेधायै नमः। ङं कान्त्यै नमः। चं लक्ष्म्यै नमः। छं धृत्यै नमः। जं स्थिरायै नमः। झं स्थित्यै नमः। ञं सिद्ध्यै नमः।

इन मन्त्रोंद्वारा जलके भीतर सृष्टि आदि दस कलाओंका पूजन करे। तदनन्तर टवर्ग और तवर्गसे उत्थित होनेवाली जरा आदि दस कलाओंका आवाहन करके—

प्रतद्विष्णुस्तवते सूर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः। यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा।

इस ऋचासे एक बार अभिमन्त्रित करे। पुनः उक्त मन्त्रका उच्चारण करके **'विष्णवे नमः'** इस मन्त्रसे पूजन करनेके पश्चात्—

टं जरायै नमः। ठं पालिन्यै नमः। डं शान्त्यै नमः। ढं ऐश्वर्यै नमः। णं रत्यै नमः। तं कामिन्यै नमः। थं वरदायै नमः। दं ह्लादिन्यै नमः। धं प्रीत्यै नमः। नं दीर्घायै नमः।

—इन मन्त्रोंद्वारा जलके भीतर पूजन करे। तदनन्तर पुनः पवर्गादिसे समुत्थित दस कलाओंका आवाहन करके

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥

—इस मन्त्रसे एक बार अभिमन्त्रित करे। पुनः इसी मन्त्रका उच्चारण करके 'रुद्राय नमः' यों बोलकर पूजन करनेके पश्चात्—

पं तीक्ष्णायै नमः। फं रौद्र्यै नमः। बं मायायै नमः। भं निद्रायै नमः। मं तन्द्रायै नमः। यं क्षुधायै नमः। रं क्रोधिन्यै नमः। लं कृपायै नमः। वं उमायै नमः। शं मृत्युरूपायै नमः।

—इन मन्त्रोंद्वारा जलके भीतर पूजन करे। फिर ष से लेकर क्ष तक पाँच वर्णोंसे समुत्थित पीता आदि पाँच कलाओंका आवाहन करके गायत्री आदि मन्त्रोंके चिन्तन-पूर्वक गायत्रीसे अभिमन्त्रितकर पुनः गायत्रीका ही उच्चारण करके 'ईश्वराय नमः।' यों बोलकर पूजन करे। तदनन्तर—

'षं पीतायै, सं श्वेतायै, हं अरुणायै, ळं असितायै, क्षं अनन्तायै।'

—इन मन्त्रोंसे जलके भीतर पूजन करके स्वरोंसे उत्थित निवृत्ति आदि षोडश कलाओंका आवाहन करे। फिर—

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु।
आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते॥

—इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके पुनः इसी मन्त्रके उच्चारणपूर्वक 'सदाशिवाय नमः' इससे पूजन करे। इसके बाद—

१–अं निवृत्त्यै नमः। २–आं प्रतिष्ठायै नमः। ३–इं विद्यायै नमः। ४–ईं शान्त्यै नमः। ५–उं इन्धिकायै नमः। ६–ऊं दीपिकायै नमः। ७–ऋं रेचिकायै नमः। ८–ॠं मोचिकायै नमः। ९–ऌं परायै नमः। १०–ॡं सूक्ष्मायै नमः। ११–एं सूक्ष्मामृतायै नमः। १२–ऐं ज्ञानामृतायै नमः। १३–ओं आप्यायिन्यै नमः। १४–औं व्यापिन्यै नमः। १५–अं व्योमरूपिण्यै नमः। १६–अः अनन्तायै नमः। इति।

इन मन्त्रोंसे जलके भीतर उपर्युक्त षोडश कलाओंका पूजन करके मातृका-मन्त्रोंद्वारा दो बार अभिमन्त्रित करे। फिर मातृका-मन्त्रोंका ही उच्चारण करके 'मातृकासरस्वती-श्रीपादुकां पूजयामि।' यों कहकर पूजा करे। तदनन्तर—

ॐअखण्डैकरसानन्दकरे परसुधात्मनि।
स्वच्छन्दस्फुरणान्मन्त्रं निधेह्यकुलरूपिणि॥

—इस मन्त्रसे तीन बार अभिमन्त्रित करके—

क्लीम् अकुलस्थामृताकारे सिद्धिज्ञानपरे करे।
अमृतत्वं निधेह्यस्मिन् वस्तुनि क्लिन्नरूपिणि॥

—इस मन्त्रसे भी तीन बार अभिमन्त्रित करे। फिर—

सौः तद्रूपेणैकरस्यं च भूत्वा ह्येतत्स्वरूपिणि।
भूत्वा परामृताकारं मयि चित्स्फुरणं कुरु॥

—इस मन्त्रसे भी तीन बार अभिमन्त्रण करे। तत्पश्चात्

'ऐं क्लूं जूं सः अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा।'

इस अमृतेश्वरी विद्याद्वारा चार बार अभिमन्त्रण करे। फिर मूलमन्त्रके उच्चारणपूर्वक 'अमृतेश्वरीश्रीपादुकां पूजयामि।' यों कहकर पूजन करे। तदनन्तर—

'ऐं वद वद वाग्वादिनि ऐं क्लीं क्लिन्ने क्लेदिनि क्लेदय क्लेदय महाक्षोभं कुरु कुरु क्लीं सौः मोक्षं कुरु कुरु क्षौं सौः।'

—इस दीपिनी विद्याद्वारा पाँच बार अभिमन्त्रण करे। तदनन्तर वहाँ मूलमन्त्रसे पुनः आठ बार अभिमन्त्रण करके उसके मण्डलके भीतर चतुरस्र पश्चिम द्वारका चिन्तन करे। और उस द्वारके दक्षिण-वाम पार्श्व भागोंमें क्रमशः कुलवटुकनाथ और उनकी वल्लभाका तथा कुम्भगणपति और उनकी वल्लभाका पूजन करे। उनके पूजनका मन्त्र इस प्रकार है—

कुलवटुकनाथं तद्वल्लभां वा श्रीपादुकां पूजयामि।
श्रीकुम्भगणपतिं तद्वल्लभां वा श्रीपादुकां पूजयामि।

इस प्रकार पूजन करके उस मण्डलके मध्यवर्ती त्रिकोणके मध्यस्थ बिन्दुमें भावित कामकलामें वक्ष्यमाण प्रकारसे देवीका आवाहन, ध्यान, षडङ्गन्यासद्वारा सकली-करण तथा गन्धादिद्वारा पूजन करके आगे बतायी जानेवाली विधिसे देवीके अङ्गमें लेपाङ्ग पूजनपूर्वक धूप-दीप निवेदन करे। फिर योनिमुद्रा, धेनुमुद्रा, महायोनिमुद्रा, त्रिशिखामुद्रा, पद्ममुद्रा तथा संक्षोभण, द्रावण, वशीकरण, आकर्षण, उन्मादन, महाङ्कुश, खेचरी, बीज, योनि, पाश, अङ्कुश, धनुष तथा बाण—इन अठारह मुद्राओंका प्रदर्शन करके प्रणाम करे। इस प्रकार विशेषार्घ्यस्थापनकी विधि पूरी हुई।

(क्रमशः)

कर्म कार्य करता है

(लेखक—डा० श्रीगोपालप्रसादजी 'वंशी')

मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः ।
नानायोनिसहस्राणि मयोषितानि यानि वै ॥
आहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः ।
मातरो विविधा दृष्टाः पितरः सुहृदस्तथा ॥
अवाङ्मुखपीड्यमानो जन्तुभिश्च समन्वितः ।

बहुत बार मैं मरा हूँ। मरकर फिर उत्पन्न हुआ हूँ। जन्म लेकर मरा हूँ। लाखों-सहस्रों शरीर मैंने देखे हैं। लाखों, सहस्रों योनियोंमें मैं गया हूँ। कितने ही प्रकारके भोजन मैंने खाये हैं। कितने ही स्तनोंका दूध पिया है, कितने ही प्रकारकी, कितनी माताएँ कितने ही पिता, कितने ही मित्र, कितने ही सम्बन्धी मैंने देखे हैं। कितनी ही बार उल्टा होकर लटका हूँ। कितने ही संकटोंको मैंने सहा है; परंतु इन संकटों और आपत्तियोंका अन्त ईश्वरसे मिले बिना कैसे होगा, कभी हुआ नहीं, होगा नहीं।

यह है बार-बार शरीर धारण करनेवाले जीवकी पुकार। परंतु जबतक ऐसे कर्म विद्यमान हैं, जिनसे शरीर मिले, तबतक जन्मका होना अवश्यम्भावी है। इन संचित—पहले किये हुए कर्मोंके अनुसार ही शरीर मिलता है, परिवार मिलता है, बुद्धि मिलती है तथा कई अन्य वस्तुएँ मिलती हैं।

कर्मके इस सिद्धान्तको जो लोग नहीं मानते, वे प्रायः कहते हैं कि यह सब कुछ स्वयं ही हो जाता है। परंतु कैसे हो जाता है मेरे भाई! एक बालक जन्मसे अंधा उत्पन्न हुआ। आप कहते हैं, यह बात उसके माता-पिताकी भूलसे हुई। परंतु यह भी तो सोचें कि इस बालकके जन्मके समय माता-पितासे भूल क्यों हुई? प्रत्येक बातके पीछे मनुष्यका अपना कर्म कार्य कर रहा है।

एक व्यक्तिका बहुत प्यारा बच्चा था। एक सर्पने उसे डँस लिया। बच्चा मर गया। पिता दुःखसे व्याकुल हो उठा। एक सपेरा बुलाया गया। उसने आकर साँपको पकड़ लिया। सर्पको पिताके सामने करके वह बोला, 'इसने तुम्हारे बच्चेको मार डाला है, तुम इसे मार डालो।' पिताने सर्पकी ओर देखते हुए कहा—'इसे मारनेसे क्या मेरा बच्चा जी उठेगा?' सपेरेने कहा—'बच्चा तो अब जी नहीं सकता।' पिताने कहा—'तो मैं इसे मारकर क्या करूँगा, तुम ही इसे ले जाओ, जो उचित हो वह करो।'

सपेरा सर्पको लेकर वनमें चला गया। उसे सामने रखकर पत्थरसे उसका सिर कुचलने लगा तो साँपने कहा—'ठहरो।' सपेरेने आश्चर्यसे कहा, 'क्यों?' सर्प बोला, 'मुझे क्यों मारते हो?' सपेरेने कहा, 'तुमने एक बच्चेको डँसकर मार दिया है।' सर्प बोला, 'मैंने उसको नहीं मारा, उसकी मृत्यु आ गयी थी, उसने मुझे कहा, इसे डँस लो।' सपेरेने मृत्युकी खोज की और अन्तमें उसके पास पहुँच गया। बोला, 'मैं तुम्हें दण्ड दूँगा, तुमने उस बच्चेको मारनेकी आज्ञा क्यों दी?' मृत्युने मुसकराकर कहा, 'इसलिये दी कि ऐसा करनेका काल आ गया था।' सपेरेने कालको ढूँढ़ा, बोला, 'तुम्हें दण्ड दूँगा।' कालने कहा, 'तुम समझ नहीं सकते। इसके कर्मोंका फल यही था। कर्मके फलको कोई भी नहीं टाल सकता।' सपेरेने कर्मको जा पकड़ा, बोला, 'तुमने यह बुरा कार्य क्यों किया?' कर्मने कहा, 'मुझसे क्यों पूछते हो, मरनेवालेसे पूछो, मैं तो जड़ हूँ, करनेवाला वह है।' सपेरा बच्चेकी आत्माके पास पहुँचा। उसने धीमेसे कहा, 'ये सब लोग ठीक कहते हैं, मैंने ही वह कर्म किया था, जिसका यह परिणाम हुआ।'

सो भाई मेरे! इस वहममें न रहें कि कोई भी बात स्वयमेव हो जाती है। जो कुछ होता है, इसके पीछे भोगनेवालेका अपना कर्म कार्य करता है।

दीपावली

(लेखक—पं० श्रीकालीचरणजी दीक्षित, 'कवीश' साहित्य-विशारद)

दीपावली सांस्कृतिक पौराणिक राष्ट्रीय वैज्ञानिक एवं हर्षोल्लासका महापर्व है। इस पर्वके सम्बन्धमें अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। स्कन्दपुराण और ब्रह्मपुराणमें इसका सुन्दर वर्णन है। दीपावलीसे संदेश मिलता है। **'असतो मा सद् गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय।'**

इतिहासविशेषज्ञोंके कथनानुसार जब मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी चौदह वर्ष वनवासके उपरान्त दुर्धर्ष लंकाधिपति रावणपर विजय प्राप्त कर श्रीसीता-लक्ष्मण और अपने सहयोगियोंके साथ अयोध्या लौटे तब उनके प्रत्यागमनपर साकेतकी जनताने हर्ष और उल्लासमें मग्न होकर समस्त नगरको दीपज्योतिसे जगमगाकर अपनी अपार प्रसन्नता प्रदर्शित करते हुए उनका हार्दिक स्वागत किया था। उसी दिन श्रीरामका राज्याभिषेक हुआ था। तभीसे उसके उपलक्ष्यमें प्रतिवर्ष दीपावलीका उत्सव अपने देशमें मनाया जाने लगा।

बंगालमें कालिकापुराणकी कथाके अनुसार यह विश्वास किया जाता है कि राक्षसोंके दमनके प्रचण्ड आवेशाभिभूत विकराल महाकाली हिंसक संहारक प्रेरणाओंके कारण इतनी क्रोधोन्मत्त हुईं कि प्राणीमात्रके संहारमें लग गयीं। समस्त संसार त्राहि-त्राहि करने लगा। भगवान् शिव कालीको शान्त करनेके लिये मार्गमें लेट गये। क्रोधोन्मत्त महाकालीका पैर भगवान् शंकरके वक्षःस्थलपर पड़ा; किंतु देवाधिदेव महादेवके तपःपूत शरीरका स्पर्श होते ही महाकालीकी दृष्टि महेश्वरपर पड़ी, जिससे उन्हें बड़ी लज्जा हुई और उनका क्रोध शान्त हो गया। वे शिवजीकी शरणागत हुईं। महाकालीके इस संहारक रूपसे मुक्ति पाकर मानवसमाजने हर्षविभोर हो घर-घर सजावटके साथ दीपक जलाये। तबसे प्रति-वर्ष उसी प्रसन्नतामें लोग दीपावली मनाने लगे। बंगाली इस कालरात्रिको तान्त्रिक विद्या सिद्ध करते हैं। मिथिलामें भी कालीपूजन और लक्ष्मीपूजन इसी रात्रिको बड़े समारोहसे मनाते हैं। पान, नारियल, तालमखाना खाकर रातको लकड़ी जलाकर मसाल जला गाँवका चक्कर लगाते हैं। 'अलाय बलाय जात है भूत प्रेत भाग है' ऐसा कहकर मसालको गाँवके बाहर डाल आते हैं। उत्तरप्रदेशके तराईमें थारू जातिके लोग एक मासके लगभग दीवाली मनाते हैं।

हरिवंशपुराणके अनुसार राजा बलिसे भगवान् वामनने तीन पग भूमि दानमें लेकर सम्पूर्ण पृथ्वी तीन कदममें नापकर बलिको पातालका राज्य देकर कहा—'वर्षमें एक दिन राजा बलि अपने साम्राज्य वैभवका दर्शन कर सकेंगे।' मद्रास और दक्षिणमें दीपावली इसी आशयसे मनाते हैं। वहाँकी जनता आजके दिन राजा बलिका आह्वानकर दीपकोंसे दूकान और घर सजाकर अपनी प्रसन्नता प्रदर्शित कर राजा बलिका स्वागत करती है। हैदराबादमें राजा बलि और भगवान् श्रीकृष्णकी कथा दीपावलीमें सुननेकी परम्परा है। आन्ध्रमें एक मचानपर महिलाएँ दीपावलीकी रातमें बैठकर दीपक जलाकर हीड़ो उत्सव करती हैं। यह हीड़ो उत्सव उत्तरप्रदेश, हरियाणा, राजस्थान और मारवाड़में भी होता है।

महाराष्ट्रमें दीपावली यम-पूजाके रूपमें मनायी जाती है। पौराणिक कथनानुसार कहा जाता है कि यमराज और यमुना सगे भाई-बहिन हैं। यमुनाके बार-बार बुलानेपर भी यमराजको अवकाश नहीं मिलता था। एक दिन यम देवता अवकाश निकालकर बहिन यमुनाके घर जा पहुँचे। यमुनाने अपने भाई यमका सत्कारकर सुस्वादु मीठा भोजन कराया। भोजनोपरान्त यमुनाने यमराजसे कहा—'आप आजके दिन प्रतिवर्ष यहाँ आ जाया करें तथा आजके दिन जो भाई-बहिन मथुराके इस विश्रामघाटपर साथ-साथ स्नान-भोजन करें, उन्हें आप यमदण्डसे मुक्त कर दें।' यमने प्रसन्न हो 'एवमस्तु' कहा। जिस दिन यमुनाके घर यमने जाकर भोजन किया था, उस दिन कार्तिक शुक्ला द्वितीया थी। उसी दिनसे दीपावलीके साथ-साथ भैयादूजका पर्व भी प्रारम्भ हुआ।

उत्तरप्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्यप्रदेश, पंजाब आदिमें कुछ लोक-प्रथाके भेदसे धनतेरस, छोटी दीवाली, बड़ी दीवाली, गोवर्धनपूजा, अन्नकूट, भैयादूज—पाँच दिनतक उत्सव मनाया जाता है। धनतेरस कार्तिक कृष्ण त्रयोदशीको आयुर्वेदके आचार्य धन्वन्तरि भगवान्का अवतार हुआ था। इसी दिन धन्वन्तरि-जयन्ती मनायी जाती है। इसी दिन रात्रिको नाली तथा कूड़ापर दीपक जला या

जाता है जो आयुवृद्धिका द्योतक है। इस दिन यमदीप-दान किया जाता है। धनतेरसको लोग नवीन बरतन खरीदते हैं। व्यापारी नये बही-खातोंका मुहूर्त करते हैं। फिर दूसरे दिन नरक चतुर्दशी या छोटी दीवाली मनायी जाती है। यह छोटी दीवाली आसामके प्राग्ज्योतिषपुरके स्वामी नरकासुरपर भगवान् श्रीकृष्णके विजयोत्सवके उपलक्ष्यमें मनायी जाती है इसको रूप-चतुर्दशी भी कहते हैं। चौकीके नीचे प्रज्वलित दीपक रखकर उसपर बैठकर स्नान किया करते हैं।

इस छोटी दीपावली अर्थात् नरक-चतुर्दशीको कहीं-कहीं श्रीरामभक्त हनुमान्की जन्मतिथि मानी जानेके कारण हनुमज्जयन्ती भी मनायी जाती है।

कार्तिक शुक्ल प्रतिपदाको भगवान् श्रीकृष्णने अपार वर्षासे व्रजवासियोंकी रक्षाकर इन्द्रका गर्व चूर्ण किया था तथा गोवर्धन पर्वतको धारण कर डूबते व्रजको बचाया था। तभीसे आजके दिन गोवर्धन-पूजा प्रारम्भ हुई। आज स्त्रियाँ सूप बजाकर दरिद्र भगाती हैं। गोवर्धन-पूजाके सबेरे ही भैयादूजका महोत्सव होता है। उत्तर-प्रदेशकी भाँति राजस्थानमें भी दीपावलीके दिन लक्ष्मी या चाँदीके सिक्के पूजनेकी प्रथा है। इस दिन भी नये वर्षका मुहूर्त व्यापारी लोग करते हैं तथा उसमें लक्ष्मी-पूजन किया जाता है। कुछ विद्वानोंका कथन है कि जब श्रीकृष्णने आसाम-भूटानके स्वामी दुष्ट-राजा नरकासुरका संहार किया तब नरकासुरकी माँ पृथ्वीने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'नाथ! जिस समय वाराहरूप धारणकर आपने मेरा उद्धार किया था, उस समय आपके स्पर्शसे मेरे यह पुत्र हुआ। आपने ही मुझे यह पुत्र प्रदान किया और आपने ही इसका विनाश कर डाला। अब आप मेरी रक्षाकर इसके पापापराध क्षमा करें।' पृथ्वीकी विनतीपर करुणानिधान प्रसन्न हो बोले—'आजसे इसकी स्मृतिमें यह मृत्युतिथि महापर्वके रूपमें मनायी जायगी।' तबसे यह दिन भी नरक चतुर्दशी अथवा छोटी दीवालीके नामसे प्रसिद्ध हुआ। भारतके कई भागोंमें आजके दिन भी दीप जलाये जाते हैं।

नेपाल देशकी दीवाली भी भारतके साथ-साथ पाँच दिनोंतक मनायी जाती है। नेपाली भाई राम और दुर्गाकी विजयका यह दीपावली त्यौहार मनाते हैं। प्रथम दिन कौएको यमदूत मानकर खीर खिलाते हैं। दूसरे दिन कुत्तेको भोजन देते हैं; क्योंकि यह कुत्ता हिमालय-यात्रामें धर्मराज युधिष्ठिरके साथ रहा था। तीसरे दिन गौको लक्ष्मीरूप मानकर पूजन करते हैं। चौथे दिन हाथी-घोड़ा आदि पशुपतियोंकी पूजा करते हैं। पाँचवें दिन नेपालकी दीवालीका भी पर्यवसान भैयादूजको होता है। नेपालमें पाँचों दिन दीपदान होता है। लंकामें दीवाली राष्ट्रीय पर्व है। चार अगस्तको कैण्डीसे लङ्कामें सिंहिली सम्राट्के विजयोत्सवमें दीपावली मनायी जाती है। दीपक लक्ष्मीका प्रतीक है। ईसाई-क्रिसमिसके दिनोंमें, मुसलमान शबेबरातमें दीपोंकी आराधना करते हैं। कलिङ्ग, मगध-तक्षशिलामें राजनैतिक दृष्टिसे सम्राट् अशोकके अहिंसाव्रत अपनानेके दिन दीपावली होती है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे भी वर्षाके चार मासमें उत्पन्न कीट-पतङ्ग, कूड़ा-करकटसे अनायास रोगके कीटाणु पैदा हो जाते हैं। घरमें जाला, नमी, सीलन हो जाती है। घरकी सफाईसे कूड़ा-करकट, कीट-पतंग, सीलन दूर होती है। आयुर्वेदिक दृष्टिसे सरसोंके तेलसे दीपकके प्रकाशमें आँखोंको लाभ होता है। पंजाबमें लक्ष्मी-गणेश-पूजनके साथ-साथ दीपावली होती है तथा आजकल कई जगह स्वामी रामतीर्थकी स्मृतिमें वेदान्तसम्मेलन होता है। भारतके अतिरिक्त विदेशोंमें भी विभिन्न रूपोंमें दीपावली मनायी जाती है।

चीनमें फरवरीमें दीपदान होता है। जापानमें दीपोत्सवकी शैली पृथक् है। जापानियोंका विश्वास है कि उनके स्वर्गवासी पूर्वज इस दिन आशीर्वाद देने आते हैं। अतः जापानी पूर्वजोंके मार्गको स्पष्ट प्रकाशित रखने हेतु दीप जलाते हैं। यूरोपमें राजनैतिक विजयोत्सव स्वतन्त्रता दिवसमें दीपावली होती है। वहाँ भारत (एशिया) की भाँति धार्मिक दीपावली नहीं होती। इंगलैंडका गेफाक्स दिवस उस देशकी दीवाली है। १७४९ में ऐक्स लाशेपेलकी संधिकी स्मृतिमें ५ नवम्बरको वहाँ दीपप्रकाश-उत्सव होता है। फ्रांसका बसिली दिवस १४ जुलाईको फ्रांसमें बसिली-दिवस धूमधामसे मनाया जाता है। नाम-भेदसे उसे दीपावली कहा जा सकता है। रूसमें सात नवम्बरको क्रान्ति-सफलता-दिवस मनाया जाता है। शैली भेद है, किंतु दीपक सभी जलाते हैं। ४ जुलाईको अमरीकी जनताने ब्रिटिश सत्तासे मुक्त होकर स्वतन्त्रता पायी थी। उसकी वर्षगाँठ दीपावली सदृश होती है।

भारतमें अनेक प्रकारसे दीवाली मनायी जाती है। वेद, स्मृति, पौराणिक कालके अक्षक्रीड़ा—द्यूतसभाका

तात्पर्य दूसरा था। तभी दीपावलीमें एक दिन द्यूत (जुआ) की छूट दे दी जाती थी।

शिवजीने उमाके मनोरञ्जनके हेतु जुआ (द्यूत) की उत्पत्ति की थी। शतरंजकी उत्पत्ति रावण-मन्दोदरीने सैन्य-व्यूहरचनाके लिये की थी। अब लोग शतरंज एवं चौसरसे जुआ खेलकर पतनके गर्तमें जाने लगे। अतः जुआ—द्यूत निन्दनीय और त्याज्य व्यसन है। चौसरसे महाभारत हुआ। जुआसे ही राजा नल-दमयन्तीका विछोह हुआ। अतः जुआका बहिष्कारकर देशको सुखी समृद्धिशाली बनाना चाहिये तथा 'सर्वभूतहिते रताः'की कल्याणमयी भावनासे संगठनपूर्वक सभीको सप्रेम दीपोंकी ज्योतिके द्वारा गणेश-लक्ष्मीपूजन आदि करने चाहिये।
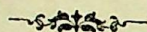
गांधीजी और गोरक्षा

[गताङ्क पृष्ठ ११९५से आगे]

भारतवर्षमें रहनेवाले अन्य धर्मावलम्बी

हरिजन, १०-८-१९४७ (गांधीजी और गोरक्षा, पृष्ठ ८)

हिंदूधर्ममें हिंदुओंके लिये ही गोहत्याका निषेध है, सारी दुनियाँके लिये नहीं।······भारत केवल हिंदुओंका ही नहीं है, मुसलमानों, सिखों, पारसियों, ईसाइयों और उन सबका भी है जो भारतीय होनेका और संघके प्रति निष्ठाका दावा रखते हैं।

यह ठीक है कि दूसरे धर्मोंमें गोहत्याका निषेध नहीं है। पर किसी भी धर्मने हिंसाको श्रेष्ठ नहीं बताया है, बल्कि उसकी बुराई की है। किसी भी अन्य धर्ममें गोहत्याका निषेध नहीं है तो विधान भी नहीं है। उस समयतक सम्भवतः महात्माजीने स्वयं सब धर्मोंका अध्ययन किया नहीं होगा और मुसलमानोंने उनपर प्रभाव डाल रक्खा होगा कि उनके धर्ममें गायकी कुर्बानी लाजमी है। इस सम्बन्धमें आचार्य श्रीविनोबाजीके वचन देखिये—

('बिल्डिंग ग्राम विलो—एसेज आन इण्डियाज 'कैटल इकोनामी'—प्रकाशक कृषि-गोसेवा-समिति, नयी दिल्ली–१, पृष्ठ ११ एवं १३ से अनूदित)

'गोहत्या कानूनद्वारा बन्द होनी चाहिये। ऐसा कहा जाता है कि इस प्रकारका कानून बनाना धर्मनिरपेक्ष राज्यमें सम्भव नहीं है; क्योंकि भारत धर्म-निरपेक्ष राज्य है।

'मैंने मुस्लिम धर्म-ग्रन्थोंका अध्ययन किया है और मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि इस प्रकारकी बात मुस्लिम-धर्मका अपमान है। मैं मुस्लिम-धर्मकी तरफसे बोलता हूँ और मुझे विश्वास है कि इस विषयपर कोई भी मुसलमान मेरा विरोध नहीं करेगा कि पवित्र कुरानमें कोई भी ऐसा प्राचीन शब्द नहीं है, जिसके अनुसार गोवधकी माँग की गयी हो। यही बात हिंदू धर्मशास्त्रोंके सम्बन्धमें कही जा सकती है, जो हत्याको किसी भी प्राचीन शब्दके अनुकूल नहीं मानते। हिंदू और मुसलमान—दोनों ही तबतक वास्तविक रूपमें बुद्धिमान् नहीं कहे जा सकते, जबतक कि वे धर्मके नामपर पशुओंका वध नहीं त्यागते। सम्राट् अकबरके राज्य-कालमें गोवध बंद था। हमारी सरकारको मानना चाहिये कि इस प्रकारका कानून धर्म-निरपेक्षताके तत्त्वोंका विरोधी नहीं है। अतएव गोवध कानूनके द्वारा बंद कर दिया जाना चाहिये।'

उपसंहारके समय फिर संक्षेपमें कहना चाहता हूँ कि यह तर्क करना सर्वथा असत्य है कि धर्म-निरपेक्ष राज्य गो-वध बंद करनेके लिये कानून नहीं बना सकता।

पारसी धर्ममें भी ऐसी बात नहीं है जिससे गोवध लाजमी हो।

यदि मुसलमान-धर्ममें गायकी कुर्बानी लाजमी होती तो मुसलमान बादशाह कभी भी गोहत्या-बंदीका फरमान जारी नहीं करते। न ईसाई-धर्ममें ही इस प्रकारका विधान है,

भले ही वे मांसाहारी हों। सच बात तो यह है कि उनके धर्मग्रन्थमें भी इसकी मनाही है। निम्नलिखित वाक्य देखिये—

बाईबल

For 'meat' destroy not the work of God

(Romans 15—20)

मांसके लिये भगवान्‌की कीर्तिको नष्ट न करो।

It is good neither to eat flesh, nor to drink wine, nor anything whereby thy brother stumbleth, or is offended, or is made weeak.

(Romans 15—21)

न मांस खाना अच्छा है, न शराब पीना, न कोई ऐसा काम करना अच्छा है, जिससे हमारा भाई (साथी) लड़खड़ाने लगे, व्यथित हो या कमजोर हो जाय।

Sacrifice and offering Thou didst not desire; Mine ears have You opened burnt offering and sin offering hast Thou not required.

(Psalms 40—6)

हे भगवन्! तुमने जीवोंका बलिदान नहीं माँगा, अग्निमें उनकी आहुति नहीं चाही। ऐसे पाप तुमको अभीष्ट नहीं हैं। तुमने मेरे कान खोल दिये।

I will take no bullock out of Thy house, nor he goats out of Thy folds.

(Psalms 50—9)

मैं तेरी सृष्टिसे न बैलको हटाऊँगा, न बकरेको।

For every beast of the forest is Mine, and the cattle upon the thousand hills.

(Psalms 50—10)

जंगलमें रहनेवाले जीव और हजारों पहाड़ियोंपर रहनेवाले पशु मेरे हैं।

I know all the fowls of the mountains; and the wild beasts of the field are mine.

(Psalms 50—11)

पहाड़ोंपर रहनेवाले कुक्कुट, मैदानमें रहनेवाले जंगली जीव सभी मेरे हैं।

If I were hungry, I would not tell thee; for the world is mine, and the fullness there.

(Psalms 50—12)

मैं भूखा होऊँगा तो तुमको नहीं कहूँगा। सभी सृष्टि मेरी है और भरी-पूरी है। (ईश्वरके नामपर जीवहिंसा करनेवालोंके प्रति वे कह रहे हैं कि मैंने अपनी भूख तुम्हारे सामने प्रकट नहीं की। सभी सृष्टि मेरी है और मेरी भूख शान्त करनेके लिये मुझे तुम्हारी हिंसाकी जरूरत नहीं है।)

Will I eat the flesh of bulls, or drink the blood of goats ?

(Psalms 50—13)

क्या मैं बैलोंका मांस खाऊँगा और बकरोंका खून पीऊँगा ?

I will have mercy and not sacrifice

(Mathews 9—13)

मैं हिंसा नहीं, दया चाहता हूँ।

He that killeth an ox is as if he slew a man; He that sacrificeth a lamb, as if he cut off a dog's neck

(Isaiah 66—3)

जिसने बैलकी हत्या की, उसने मानो मनुष्यकी हत्या की। जिसने भेंड़के बच्चेकी हत्या की, उसने मानो कुत्तेकी गरदन काटी है।

सिखोंमें तो नामधारियोंने गोरक्षामें बड़ी-बड़ी कुर्बानियाँ की हैं। कूका इतिहास प्रसिद्ध है।

जब किसी भी अन्य धर्ममें गोवध लाजमी नहीं है तो क्या उनका यह कर्तव्य नहीं है कि वे हिंदुओंके धार्मिक भावोंका आदर करें ? यदि ऐसा नहीं करते हैं तो क्या यह भारत सरकारका कर्तव्य नहीं है कि संविधानके अनुच्छेद २५ (२) के अनुसार हिंदुओंकी धार्मिक भावनाओंपर आघात न होने दे ? यदि ऐसा नहीं होता है तो क्या हिंदू चिरकालतक इसको चुपचाप सहते जायँ और चूँ भी न करें ?

मालिकोंका ढोरोंके साथ दुर्व्यवहार

महात्माजीने लिखा है—

'अक्सर मालिक अपने गरीब पशुओंको भूखा मारता है और उनसे, उनकी शक्तिसे अधिक काम लेता है और उनपर निर्दयता करता है ।'

—हरिजन, १५–२–१९४९ (गांधीजी और गोरक्षा, पृष्ठ ४–५)

ठीक इन्हीं वाक्योंके पूर्व उनके ये शब्द भी उद्धृत किये गये हैं—

'हमारे अधिकांश ग्रामीण भाई पशुओंके साथ ही अक्सर एक ही घरमें रहते हैं और भूखे भी एक साथ मरते हैं ।'

इन वाक्योंसे यह स्पष्ट है कि यह दोषारोपण—मालिक अपने गरीब पशुओंको भूखा मारता है और उनसे उनकी शक्तिसे अधिक काम लेता है और उनपर निर्दयता करता है—ग्रामीण भाइयोंपर लागू नहीं होता । यह दोष लागू होता है शहरोंमें गाड़ियोंमें जोतनेको रखनेवाले बैलोंके मालिकोंपर ही । शहरोंमें रहनेवाले तो व्यापारी हैं, गोपालक नहीं, चाहे वे भार ढोनेके लिये बैल रखते हों अथवा दूध बेचनेके लिये गाय रखते हों या दूध पीनेके लिये गाय रखते हों ।

शहरके वातावरणपर अर्थशास्त्रियोंका प्रभाव है । वहाँ प्रत्येक बात रुपये-पैसेमें तौली जाती है । मिल मालिक मजदूरसे अधिक-से-अधिक काम लेना चाहता है, दूकानदार दूकानपर काम करनेवाले नौकरसे अधिक-से-अधिक काम लेता है (आजकल तो राजनैतिक यूनियनोंके कारण ऐसी बात प्रायः नहीं रही) । बैलका मालिक भी वही करता है । उनकी कोई यूनियन नहीं, वे मूक हैं, इसलिये चुपचाप सहते जाते हैं । दूध बेचनेवाला बछड़ेको क्यों इतना महँगा दूध पिलावे, जब काफ लैदर बेचनेवाले उसका अच्छा मूल्य देकर खरीदनेको तैयार हैं । दूध पीनेवाले भी इतना कीमती दूध बछड़ेको क्यों पिलावें जब बदलेमें उससे कुछ मिलता नहीं । अतः जबतक अर्थकरी भावनाका नाश नहीं होता, तबतक अर्थ–उपार्जनकी दृष्टिसे गाय-बैलोंको रखनेवाले लोग ऐसे ही करेंगे । बलिहारी है अर्थकी महत्ताकी और अर्थशास्त्रियोंकी ।

लेकिन बहुत बड़ी संख्यामें रहनेवाले ग्रामीण गरीब किसानोंके प्रति न यह इल्जाम है और न यह सत्य है । आजके युगमें अंग्रेजीके अधिकांश शिक्षित लोग अपने माँ-बाप मर जानेपर भी नहीं रोते, किंतु किसानका कोई गाय-बैल या बछड़ा मर जाता है या कष्ट पाता है तो उसकी आँखोंसे पानी निकलने लगता है ।

गोरक्षाके लिये कानून

'भारतीय संघमें कानूनके द्वारा गोहत्या रोकनेका प्रस्ताव बहुत बड़ी गलती होगी··· । इस तरहके मामलोंमें निषेध कानून बनाना हिंदुत्वकी गलत ढंगकी सेवा होगी । हिंदुत्वकी रक्षा तभी हो सकती है, जब हर मजहबके लोगोंके साथ पूरा न्याय किया जाय ।'

—हरिजन, ३१–८–१९४७ (गांधीजी और गोरक्षा, पृष्ठ ७)

'मैं धर्ममें सरकारका किसी तरह भी हस्तक्षेप नहीं चाहता और गौका सवाल भारतमें आर्थिक और धार्मिक दोनों तरहका है । जहाँतक अर्थव्यवस्थाका सवाल है, मुझे यह कहनेमें जरा भी संकोच नहीं कि देशके पशुधनकी रक्षा करना हर शासनका काम है चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान । भारतमें तो, जिसे मैं हिंदुओंके समान ही मुसलमानों, ईसाइयों और दूसरोंका भी देश समझता हूँ, हिंदूराज्य भी, ऐसे गोवधको रोक नहीं सकता, जिसे प्रजाका कोई वर्ग, धार्मिक कार्य समझे और जिसे अपने घरमें बिना हिंदुओंकी धार्मिक भावनाको ठेस पहुँचानेके इरादेसे करे ।'

—यंग इण्डिया, ७–७–१९२७ (गांधीजी और गोरक्षा, पृष्ठ ११)

उपर्युक्त उद्धरणोंसे महात्माजीके गोरक्षाके लिये कानून-पर विचार व्यक्त होते हैं । साथ ही वे देशके पशुधनकी रक्षा करना हर शासनका काम है—यह भी कहते हैं और किसी भी धर्ममें सरकारका हस्तक्षेप भी नहीं चाहते । नये-नये कसाईखाने खोलनेकी सरकारद्वारा योजना, गोवंशके पशुओंको मारकर चमड़ा और मांस निर्यात करके अधिक कमाई करनेकी योजना क्या सरकारद्वारा देशके

पशुधनकी रक्षा है और हिंदूधर्ममें हस्तक्षेप नहीं है जबकि हिंदूधर्मके अनुसार गोहत्या सर्वथा वर्जित है और किसी भी दूसरे धर्ममें गोहत्या जरूरी नहीं है। सन् १९२७ में गांधीजीने सम्भवतः उनके ईसाई और मुसलमान साथियोंकी प्रेरणासे यह समझ रक्खा होगा कि उनके धर्मके अनुसार गोहत्या लाजिमी है। यह गलतफहमी ईसाइयोंके धर्म-ग्रन्थोंके उद्धरणसे, जो इन प्रबन्ध-रचनाओंके पृष्ठ २२ और २३ पर है, दूर हो जानी चाहिये। मुसलमानोंके धर्मके सम्बन्धकी गलतफहमी आचार्य श्रीविनोबा भावेके वचनोंसे दूर हो जानी चाहिये जो इन प्रबन्ध-रचनाओंके पृष्ठ २१ और २२ पर है। इससे यह बात तो स्पष्ट हो जाती है कि यदि कानूनद्वारा गोवध बंद हो तो दूसरे किसी भी धर्मपर हस्तक्षेप नहीं होता और गोवध जारी रखने देकर कानूनद्वारा दोषयुक्त न माना जाना और सरकार-द्वारा मारे हुए गोवंशके चमड़े और मांसके निर्यातद्वारा धन कमानेकी योजना बनाना सीधा हिंदूधर्मपर जान-बूझकर आघात पहुँचाना है और संविधानके अनुच्छेद २५ (२) का हिंदूधर्मकी भावनाके विरुद्ध सर्वथा दुरुपयोग है।

यंग इण्डिया, २९–१–१९२१ (गांधीजी और गोरक्षा, पृष्ठ ४) में महात्माजीने लिखा है—

'मेरी यह इच्छा है कि सारी दुनियामें गौकी रक्षा हो जाय और सब इस सिद्धान्तको मानें। लेकिन इसके पहले मेरे अपने घरको ठीक करना जरूरी है।

यंग इण्डिया, ११–११–१९२६ (गाधीजी और गोरक्षा, पृष्ठ ५) में वे लिखते हैं—

गोरक्षा तो हमें करनी ही है

इससे इतना तो स्पष्ट ही है कि गोरक्षा जरूरी तौरपर करनी ही है। जबतक गोहत्या करके उसके चमड़े और मांससे धन कमानेकी अर्थशास्त्रियोंकी बात भारत-सरकार मानती रहेगी, तबतक गोरक्षा बहुत ही कठिन है।

यदि भारत-सरकार कानून नहीं बनाना चाहती तो महात्माजीकी यंग-इण्डिया, ७–७–१९२३ (गांधीजी और गोरक्षा, पृष्ठ १३) में दी हुई योजनाको स्वीकार करनेकी तुरंत घोषणा करे और उसको व्यवहारमें लावे। वह योजना इस प्रकार है—

(१) सरकार खुले बाजारमें बेचे जानेवाले हर पशुको ऊँची बोली लगाकर खुद खरीदे।

(२) सरकार सब बड़े-बड़े शहरोंमें अपनी ओरसे दूधशालाएँ चलाये, जिससे लोगोंको सस्ता दूध मिले।

(३) सरकार अपने पाले हुए मृत पशुओंकी खाल और हड्डियोंका उपयोग करनेके लिये चमड़ा कमानेके कारखाने चलाये और दूसरोंके मरे हुए पशु भी खरीदे।

(४) सरकार आदर्श पशु-शालाएँ खोले और लोगोंको सिखाये कि पशुओंको कैसे पाला जाता है और उनकी नस्ल कैसे सुधारी जाती है।

(५) सरकार पशुओंके लिये यथेष्ट गोचर जमीनकी व्यवस्था करे और पशु-पालनके अच्छे-से-अच्छे विशेषज्ञ दुनिया भरसे बुलाये और लोगोंको पशुपालनका वैज्ञानिक तरीका सिखाये।

(६) इस कामके लिये एक अलग सरकारी विभाग खोला जाय। यह विभाग लाभ कमानेके लिये नहीं चलाया जाय और इससे लोगोंको अच्छी नस्लके पशु तैयार करने और दूसरी बातोंमें मदद मिले।

हरिजन, ३१–८–१९४७ (गांधीजी और गोरक्षा, पृष्ठ १४) में महात्माजीने लिखा है—

'यदि गोरक्षाको शुद्ध आर्थिक दृष्टिसे देखा जाय, तो सूखी और बहुत कम दूध देनेवाली गायों तथा बूढ़े और बेकार बैलोंको काटनेमें सोचनेकी कोई जरूरत नहीं; लेकिन ऐसी क्रूर अर्थव्यवस्थाका भारतमें कोई स्थान नहीं है।'

महात्माजीकी उपर्युक्त योजनाके अन्तर्गत सरकार मारे हुए ढोरोंके चमड़े और मांसके निर्यातके व्यापारको तुरंत बंद करे और अच्छी नस्लके इलाकोंसे कलकत्ता, बम्बई जैसे बड़े शहरोंमें पशुओंका ले जाना बंद करे।

इन सब कामोंके लिये तुरंत फरमान निकाले और उसको भंग करनेवालोंका अपराध कानूनमें हस्तक्षेप समझकर उनको दण्डित किया जाय।

अमोघ देवीकवच और मन्त्र

श्रीदुर्गासप्तशतीके अन्तर्गत 'श्रीदेवीकवच' है। यह कवच अत्यन्त प्रभावशाली है, मानवमात्रके लिये वरदान है। शरीरके कौन-से स्थानमें कौन-सी देवीका स्थान है, यह इस कवचके द्वारा समझमें आता है। उस स्थानकी देवी वहाँका संरक्षण करती हैं। श्रद्धालु और सद्भक्त विश्वास-पूर्वक कवचका पाठ करते हैं तो उन्हें मनोवाञ्छित फल अवश्य मिलता है।

पाठके साथ-साथ अनेक भिन्न-भिन्न प्रकारके मानसिक, शारीरिक, दैवी रोगियोंपर इस कवच तथा मन्त्रोंद्वारा चिकित्सा की जाती है। और उसके फलस्वरूप व्याधिनाश आदि होते हैं। 'कल्याण'के पाठकोंके प्रयोगार्थ यहाँ पृथक्-पृथक् व्याधियोंके विनाशके लिये कुछ मन्त्र दिये जाते हैं। मन्त्रोंका सही अनुभव मिलनेपर मुझे पत्र लिखें। विशेष जानकारीके लिये भी नीचे लिखे पतेपर पत्रव्यवहार कर सकते हैं।

कवचका दिनमें तीन बार शुद्धतापूर्वक पाठ करनेसे सिद्धि प्राप्त होती है, आत्मिक बल मिलता है तथा समय-पर भक्तको अपने इष्टका साक्षात्कार होता है—यह सत्य है।

निम्नलिखित मन्त्रोंको पर्वकालमें उज्जीवित (सिद्ध) कर लेना चाहिये। प्रत्येक मन्त्रकी जप-संख्या १००८ है। मन्त्र जैसे दिये गये हैं, वैसे ही उनका जप करना चाहिये। मन्त्रोंको शुद्ध करनेका प्रयास नहीं करना चाहिये या व्याकरणादिकी भूलोंको शुद्ध नहीं करना चाहिये। मन्त्रोंमें बताये गये बीजाक्षरोंका स्पष्ट तथा दीर्घ उच्चारण करनेसे शीघ्र लाभ होता है। स्वर-कम्पनकी लहरें व्याधिग्रस्त स्थानतक पहुँचकर अपना यशस्वी कार्य करती हैं। कृपया अनुभव प्राप्त करनेपर मुझे आशीर्वाद-पत्र अवश्य लिखें।

(१) **'ॐ उं उमादेवीभ्यां नमः'**—इस मन्त्रसे मस्तक-शूल तथा मज्जा-तन्तुओंकी समस्त विकृतियोंपर नियन्त्रण होता है—विशेषतः पागलपन तथा स्त्रियोंके 'हिस्टीरिया' आदि विकारोंपर इसका अच्छा प्रभाव पड़ता है। नित्य १००८ जप करना चाहिये।

(२) **'ॐ यं यमघण्टाभ्यां नमः'**—इस मन्त्रसे नासिका-के समग्र विकार दूर होते हैं।

'ॐ शां शाङ्खिनीभ्यां नमः'—इस मन्त्रसे आँखोंके समस्त विकारोंपर नियन्त्रण होता है। रक्तपुष्पसे सूर्योदयके पूर्व आँख झाड़नेसे 'फूला' आदि विकार नष्ट होते हैं।

'ॐ द्वां द्वारवासिनीभ्यां नमः'—इस मन्त्रसे समस्त कर्णविकार दूर होते हैं।

'ॐ चिं चित्रघण्टाभ्यां नमः'—इस मन्त्रसे कण्ठमाला तथा अन्य कण्ठगत विकारोंपर नियन्त्रण होता है। विशेषतः कण्ठगत 'कर्क' रोग (कैन्सर) पर इसका अद्भुत असर देखा जाता है।

'ॐ सं सर्वमङ्गलाभ्यां नमः'—इस मन्त्रसे समस्त जिह्वा-विकारोंपर नियन्त्रण होता है। विशेषतः तुतलाकर बोलने-वालोंके लिये यह मन्त्र बहुत सर्वश्रेष्ठ है।

'ॐ धं धनुर्धारिभ्यां नमः'—इस मन्त्रसे पीठकी रीढ़के विकार दूर होते हैं। विशेषतः धनुर्वात (Titanus) के लिये यह मन्त्र प्रभावशाली है।

'ॐ मं महादेवीभ्यां नमः'—इस मन्त्रसे माताओंके स्तन-विकार अच्छे होते हैं। जिन माताओंको दूध नहीं आता हो या दूधमें कोई खराबी हो, उन्हें बालकका पुराना कपड़ा लेकर मन्त्र बोलते हुए प्रतिदिन सात बार झाड़नेसे विकार दूर होता है। यह विधि दिनमें तीन बार सात दिनोंतक करनी चाहिये। मन्त्र कागजपर लिखकर बालकके गलेमें बाँधनेसे नजर, चिड़चिड़ापन आदि दोष नष्ट होते हैं।

'ॐ शों शोकविनाशिनीभ्यां नमः'—इस मन्त्रसे समस्त मानसिक व्याधियाँ नष्ट होती हैं। मृत्युभय दूर होता है। पति-पत्नीका कलह-विग्रह रुकता है। इस मन्त्रको मङ्गलवारके दिन रक्तचन्दनसे और अनारकी कलमसे भोजपत्रपर लिखकर शहदमें डुबा रखनेसे मन्त्रके साथ जिनका नाम लिखा होगा, उनका क्रोध शान्त हो जायगा।

'ॐ लं ललितादेवीभ्यां नमः'—यह मन्त्र अत्यन्त प्रभावशाली है। इससे समस्त हृदयविकारोंपर नियन्त्रण प्राप्त होता है। हृद्रोगी इस मन्त्रको अधिक-से-अधिक जपते रहें तो उनका हृदय-विकार समूल नष्ट हो सकता है।

'ॐ शूं शूलधारिणीभ्यां नमः'—इस मन्त्रसे समस्त उदरस्थ व्याधियोंपर नियन्त्रण होता है—विशेषतः जलोदर तथा उदरशूलके रोगियोंके लिये यह मन्त्र लाभकारी है। माताओंके प्रसववेदनाके समय यह मन्त्र बहुत काम करता है।

'ॐ कां कालरात्रीभ्यां नमः'—इस मन्त्रसे आँतोंके समस्त विकार दूर होते हैं। विशेषतः 'अलसर' आमांश आदि विकारोंपर यह लाभकारी है।

'ॐ वं वज्रहस्ताभ्यां नमः'—इस मन्त्रसे समस्त वायु-विकार दूर होते हैं। विशेषतः 'ब्लडप्रेशर' के रोगी इसका अच्छा अनुभव प्राप्त कर सकेंगे।

'ॐ कौं कौमारीभ्यां नमः'—इस मन्त्रसे समस्त दन्त-रोगोंपर नियन्त्रण होता है। विशेषतः बालकोंके दाँत निकलनेके समय यह मन्त्र लाभकारी है।

'ॐ गुं गुह्येश्वरीभ्यां नमः'—इस मन्त्रसे समस्त गुप्त-विकारोंपर नियन्त्रण होता है। बवासीरके रोगी इसका अवश्य प्रयोग करें। शौच-शुद्धिके पूर्व इस मन्त्रका १०८ जप करनेसे 'मूलव्याधि' (अर्श) अच्छी होती है। सभी प्रकारके प्रमेह-विकार भी इस मन्त्रसे अच्छे होते हैं।

'ॐ पां पार्वतीभ्यां नमः'—इस मन्त्रसे रक्त-मज्जा-अस्थिगत विकारोंपर नियन्त्रण होता है। कुष्ठरोगी इस मन्त्रका अधिक-से-अधिक प्रयोग करें।

'ॐ मुं मुकुटेश्वरीभ्यां नमः'—इस मन्त्रसे समस्त पित्तविकारोंपर नियन्त्रण होता है। अम्लपित्तके रोगी इस मन्त्रका अवश्य प्रयोग करें। मन्त्रसे ज्वर-शान्ति होती है।

'ॐ पं पद्मावतीभ्यां नमः'—इस मन्त्रसे कफज व्याधियोंपर नियन्त्रण होता है। विशेषतः टी० बी० (क्षय)-के रोगी मन्त्रका विश्वासपूर्वक जप करते रहें।

'ॐ कं कल्याणशोभनाभ्यां नमः'—इस मन्त्रसे ग्रह, भूत-प्रेत, पिशाच, अपमृत्यु आदि भयोंसे मुक्ति मिलती है।

मन्त्रोंकी प्रतिदिनकी जप-संख्या समान (१००८) है। परिस्थितिके अनुसार अधिक-से-अधिक जप करना सर्वश्रेष्ठ है। रोगी यदि स्वयं जप नहीं कर सकते हों तो किसी पवित्र सच्चे ब्राह्मणके द्वारा जप कराया जा सकता है। बीमारीका नाश होकर—स्वास्थ्य अच्छा होनेपर कुमारीपूजन, ब्राह्मण-भोजन, वस्त्रदान, साधु-संतोंकी सेवा करनेसे दीर्घायु एवं आरोग्य प्राप्त होता है तथा भगवती राजराजेश्वरीकी परम कृपा प्राप्त होती है।

प्रकाश, जीवन, प्रेम, परम शान्ति और दिव्य शक्तिरूपमें प्रभु मेरे साथ

नित्य प्रकाश-रूप प्रभु रहते सदा सर्वदा मेरे साथ।
सुखद मार्ग दिखलाते, रक्खे वरद अभय मस्तकपर हाथ॥
प्रभु ही मेरे जीवन बनकर रहते नित शरीरमें संग।
रहता स्वस्थ, नित्य मिलता बल, रहते सत्त्वपूर्ण सब अंग॥
प्रेम-रूपसे करते मुझमें परम सुहृद प्रभु नित्य निवास।
काम-राग-कटुता-विरहित जीवनमें छाया पूर्ण मिठास॥
परम शान्ति बन बसे हृदयमें मिटे भ्रान्ति-चिन्ता-भय-शूल।
रहता शान्त-समुज्ज्वल जीवन होते सभी कार्य अनुकूल॥
दिव्य शक्ति बन रहते मुझमें करते नित नव शक्ति-विकास।
शुचितम जीवन मधुर बना सत्-चिदानन्दका नित्य विलास॥

मेप्पत्तूर नारायण भट्टतिरि

[एक भावात्मक कविके रूपमें उनकी उपलब्धियाँ]

(मूल लेखक—श्री पी० के० परमेश्वरन् नायर)

[अनुवादक—श्री टी० एस्० एल्० वी० शर्मा 'विशारद']

[स्वर्गीय श्रीनारायण भट्टतिरि 'नारायणीयम्'के रचयिता हैं । 'नारायणीयम्' संस्कृतका एक उच्चकोटिका काव्य है । श्रीमद्भागवतके सार-संग्रहके रूपमें रचित 'नारायणीयम्' काव्यकी दृष्टिसे बहुत ही उच्चकोटिका माना जाता है । उसके रचयिताके सम्बन्धमें इस लेखमें वर्णन किया गया है । श्री पी० के० परमेश्वरन् नायर 'मळयालम्' भाषाके सिद्धहस्त लेखक हैं ।]

मानव-जीवन किसी एक अदृश्य शक्तिके अधीन होकर आगे बढ़ता है । बड़े-से-बड़े महान् पुरुषोंका जीवन भी इस तथ्यको प्रमाणित करता है । बहुत-से ऐसे लोग हैं जो अपने प्रयाणमार्गसे अनभिज्ञ रहते हैं । कुछ विरले ही ऐसे होंगे जो अपने जीवनमें ही अपने प्रयाण-मार्गको समझ लेते हैं । बाह्य या आन्तरिक प्रेरणाएँ ही इसके लिये मार्ग बनाती होंगी । उसके बाद जीवन, जो अबतक एक अनिश्चित पथपर चलता रहा, एक निर्दिष्ट मार्गपर चलने लगता है । इस प्रकारके परिवर्तनके बाद ही अनेकानेक प्रसिद्ध व्यक्तियोंने विजय प्राप्त किया है ।

मेप्पत्तूर नारायण भट्टतिरिके युवावस्थामें ही इस प्रकारका एक परिवर्तन आया । उन्होंने समझ लिया कि अपना जीवन, जो अबतक भौतिक जगत्के विविध भोग-विलासोंमें व्यतीत हो रहा था, ठीक रास्तेपर नहीं चल रहा है । इस प्रकारका अपराधबोध बहुतोंको निराशामें डुबो देता है, जीवनको चकनाचूर कर डालता है, पर भट्टतिरिके जीवनमें ऐसी दुर्घटना नहीं घटी; बल्कि उनके पूर्व-पुण्यने उनकी रक्षा की और वे निर्दिष्ट स्थानपर ही पहुँच गये ।

प्रतिभायुक्त शरणार्थी

तृक्कण्डियूर (एक ग्रामका नाम) से जब रुग्णावस्थामें वे गुरुवायूर (त्रिचूरके निकट एक प्रसिद्धस्थान, जहाँ भगवान् श्रीकृष्णका विख्यात मन्दिर है) आये, तब उनकी मनोवृत्ति भगवद्-भक्तिमें विलीन हुई और साथ-ही-साथ उन्होंने शक्ति और चेतना प्राप्त कर ली, मानो एक बलवान् आश्रय मिल गया हो । यह परिवर्तन एक सामान्य व्यक्तिका बाह्य परिवर्तन नहीं था, वरं प्रतिभायुक्त पण्डित और भावनायुक्त कलाविशारदके हृदयके अन्तस्तलसे उद्भूत आन्तरिक आन्दोलन था । उसके फलस्वरूप 'सृजित' काव्य भी महत्त्वपूर्ण ही बना ।

गुरुवायूरके मन्दिरमें अपने इष्टदेवके भजनमें कुछ समय व्यतीत करके वे लौट सकते थे या अन्य संत कवियोंकी भाँति भगवान्के सम्बन्धमें कुछ स्तोत्र-रचनाकर आशीर्वाद प्राप्त कर वापस जा सकते थे । पर भट्टतिरि, जो सर्गोन्मुख कलाकार थे, इतनेसे ही संतुष्ट होनेवाले न थे । उस उबलती भक्तिधाराको कलाका मधुर आकार देनेके पश्चात् ही उनकी सृजन-शक्ति विश्राम ले पायी ।

अपने शिथिल जीवनके एकमात्र आश्रयके रूपमें जिस तेजोमयी मूर्तिको भट्टतिरिने देखा, उसको उन्होंने महाभागवतके साक्षात् भगवान्के रूपमें प्राप्त किया । 'भागवत' तो उनको मुखस्थ था ही । 'भागवत'की भक्तिलहरीमें डूबकर ईश्वरतत्त्वके तहमें जाकर उन्होंने कितनी ही बार गोते लगाये होंगे । भगवान् श्रीकृष्णके प्रभावने, जिसने चैतन्यको, चण्डीदासको, जयदेवको उन्मत्त बनाया था, भट्टतिरिको भी अपने अधीन कर लिया । पर उस भक्तिके द्वारा उस ब्रह्मतत्त्वको अपने हृदयके अन्तस्तलपर अधिक-से-अधिक दृढ़तासे उसकी अनुभूति प्राप्त करनेका सुयोग उनको अबतक नहीं मिल पाया था । अब वह चिरप्रतीक्षित सुयोग मिल गया । ईश्वरका साक्षात्कार पानेके लिये मानव-चेतनाके विविध भागोंको एक आत्यन्तिक एकाग्रतासे कर्त्तव्योन्मुख बनानेका एक वातावरण वहाँ बन गया ।

'नारायणीयम्'का उदय होता है

एक भावुककी संकल्प-विभवता और एक कलाविशारद-

की शिल्प-रचना-पटुता—इन दोनोंके एकाग्र सम्मिलनने एक अद्भुत काव्यशिल्पको जन्म दिया। यद्यपि उन्हें रुग्णताकी शान्तिके लिये प्रार्थना ही करना था, तथापि उन्होंने ठान लिया कि 'भागवत'में कथित श्रीकृष्णकथाका एक संक्षिप्त और सुन्दर कला-शिल्प बनाकर ही मुझे अपनी कामना पूरी करनी है। इस विचारसे ही वे 'गुरुवायूर'में आकर भजनमें लीन हो गये। भक्तके सर्गोन्मुख कलाकार होनेका लाभ इस प्रकार प्रकट हुआ।

सन् १८५६ ई० के श्रावण मासके एक सुदिनमें भट्टतिरि अपने छोटे भाई श्रीमातृदत्त भट्टतिरिके साथ 'गुरुवायूर' आये और भजनमें बैठ गये। उनके मनका यही संकल्प था कि प्रतिदिन प्रातः मन्दिरमें बैठकर एक दशकके निर्माणके हिसाबसे एक शत-दशकमें भागवत-कथाको संक्षिप्त रूपमें एक काव्य-शिल्पका रूप देना। इसके अनुसार भट्टतिरि प्रतिदिन मन्दिरमें बैठकर भगवान्‌में दत्तचित्त होकर पहलेसे ही निश्चित कथाको श्लोकके रूपमें भगवान्‌को सम्बोधित करके कहा करते थे और उनके छोटे भाई उन श्लोकोंको लिपिबद्ध कर लेते थे। इस प्रकार एक सौ दशकोंसे परिपूर्ण एक सुन्दर काव्यका निर्माण हुआ। यही काव्य है—'नारायणीयम्'।

'नारायणीयम्' भागवतका एक निर्जीव सार संग्रह-ग्रन्थ मात्र ही नहीं, अपितु एक ऐसा कला-शिल्प है, जिसमें एक प्रतिभासम्पन्न महाकविकी प्रज्ञा पद-पदपर लास्य करती है और जिसमें एक स्वतन्त्र काव्यके सभी लक्षण प्रस्फुटित हैं।

'नारायणीयम्'की विशिष्टता

एक संक्षिप्त ग्रन्थ क्यों इतना विशिष्ट बना? जब इसका कारण समझमें आयेगा, तभी 'नारायणीयम्'की गरिमा और भी स्पष्ट होगी। इसके लिये इस ग्रन्थको दो दृष्टिकोणसे देखना है। एक कविके उद्देश्यके अनुसार, एक स्तोत्र-ग्रन्थके रूपमें और दूसरा काव्य-गुणयुक्त एक कला-शिल्पके रूपमें।

संस्कृतमें स्तोत्र-कृतियोंकी कोई कमी नहीं। विशेषकर मूक कविकी 'पञ्चशती', वेदान्तदेशिकका 'पादुकासहस्रम्' और वेंकटाध्वरीका 'लक्ष्मीसहस्रम्' आदि प्रमुख हैं। पर 'नारायणीयम्' इन सबसे भिन्न उच्च स्तरपर स्थित है। एक केरलीय ग्रन्थ होनेके नाते, शायद इसका उतना प्रचुर प्रचार न हो पाया। यदि उत्तरभारतके भक्तोंके बीच इसका प्रचार हो गया होता तो संस्कृतके बृहत् स्तोत्रोंमें एक उच्चस्थान वे भी 'नारायणीयम्'को ही दे देते। 'मूकपञ्चशती' आदि ग्रन्थ वर्णविषयकी परिधिमें सीमित हैं और रचना-रीतिमें वैचित्र्यके लिये भी स्थान कम है। भक्तिरसके अतिरिक्त और रसोंके उद्दीपनके लिये उनमें कहने लायक स्थान नहीं है। एक ही तरहकी चाल थोड़े समयके व्यवधानमें ही पाठकके मनमें शायद नीरसता उत्पन्न कर देगी। पर 'नारायणीयम्'को देखें तो वह एक ऐसा काव्य है जो भागवतकी कथाओंके और कथापुरुषोंके संक्षिप्त वर्णनमें विभिन्न रसोंको उत्पन्न करके आगे बढ़ता है। भक्तोंमें ही नहीं, सहृदयों और तत्त्वज्ञोंमें भी वह अपना रस उत्पन्न करता है। भट्टतिरि पहले तो कवि और वैयाकरणी थे, परिस्थितियोंने ही उनको भक्तके स्थानपर आरोहित किया। इसीलिये भक्ति जब कविताके माध्यमसे गुजरी तो और भी ज्वलन्त बनी। भक्ति और कविताका एक ऐसा प्रौढ़ सम्मिलन संस्कृत साहित्यमें श्रीमत् शंकराचार्यकी कृतियोंके अतिरिक्त और कहीं शायद नहीं है।

दूसरी स्तोत्रकृतियोंसे 'नारायणीयम्'को पृथक् कराकर उच्चस्थान देनेवाली बातें, उसके अवतरणकी नाटकीयता, प्रतिपादन शैलीकी नवीनता और सर्वतोमुखी रसिकता है। सामने दीखनेवाली भगवान्‌की प्रतिमाके रूपमें भगवान्‌को सम्बोधित करके आन्तरिक भक्तिसे प्लावित होकर दया बरसानेके लिये प्रार्थना करते हुए भगवान्‌की कथाको ही गानेकी इस काव्यमय आख्यान-रीतिमें ही नवीनता है। रक्षक और रक्ष्यके सम्बन्धको विदित करनेवाला वह हार्दिक संवाद या समर्पण बहुत ही स्वाभाविक लगता है। दूसरी किसी भी स्तोत्र-रीतिसे ऐसे भाव पैदा करना असम्भव नहीं तो, कठिन अवश्य है। पाठकोंको एक ऐसी प्रतीति है कि कविके समक्ष भगवान् प्रत्यक्षरूपमें विराजमान हैं—

> तत्तावद् भाति साक्षाद् गुरुपवनपुरे
> हन्त भाग्यं जनानाम् ॥
>
> (१।१)

इस प्रकार पहले श्लोकमें ही ब्रह्मतत्त्वके प्रत्यक्षीकरण भावकी जो अनुभूति है, उसको कथाके अन्ततक बनाये रखनेमें कवि सफल हुआ है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक दशकके अन्तमें अपने रोग-मुक्तिकी प्रार्थनाको दुहरानेमें

ऊपर कही हुई साक्षात्कारकी प्रतीति बढ़ती दृष्टिगोचर होती है । प्रत्येक दशकके अन्तमें कविके हृदयसे अपने-आप निकलनेवाली भावोन्मुख सम्बोधना पाठकोंमें ईश्वरकी प्रत्यक्षीभावकी प्रतीति और भी बढ़ाती है ।

सौन्दर्योत्तरतोऽपि सुन्दरतरम्

भले ही भट्टतिरि अद्वैतवादी हैं, परंतु भगवान्‌को वे सगुणरूपमें ही मानते हैं । कविकी आराधनामूर्तिकी सुन्दरता काव्यशरीरमें भी आदिसे अन्ततक जो प्रतिविम्बित होती है, वही 'नारायणीयम्'के स्तोत्रोंकी हृद्यताके कारणोंमेंसे एक है ।

यदि साधारण जनताके ज्ञानके परे अद्वैत सिद्धान्तोंको और उनके द्वारा निर्गुण ब्रह्मतत्त्वको कवि वर्णन कर गये होते तो शायद 'नारायणीयम्' एक काव्यकी दृष्टिमें इतना सफल न हो पाता । भगवान्‌के सगुण रूपको अपना वर्ण्य विषय बनानेके फलस्वरूप 'नारायणीयम्'में हर जगह सौन्दर्ययुक्त कला नृत्य करती दिखायी देती है ।

यत् त्रैलोक्यमहीयसोऽपि महितं सम्मोहनं मोहनात्
कान्तं कान्तिनिधानतोऽपि मधुरं माधुर्यधुर्यादपि ।
सौन्दर्योत्तरतोऽपि सुन्दरतरं त्वद्रूपमाश्चर्यतो-
ऽप्याश्चर्यं भुवने न कस्य कुतुकं पुष्णाति विष्णो विभो ॥

(२ । १३)

इस प्रकार कथाके प्रारम्भमें ही अपने हृदयमें लीन भगवान्‌को कविने सौन्दर्यमूर्तिके रूपमें ही देखा है । आगे चलकर वह सौन्दर्य कितने ही रूपोंमें प्रकाशित हुआ है—देखिये, शैशवलीलामें रत बलराम और श्रीकृष्णको कवि किस प्रकार पाठकोंके समक्ष रखते हैं—

मृदु मृदु विहसन्तावुन्मिषद्दन्तवन्तौ
वदनपतितकेशौ दृश्यपादाब्जदेशौ ।
भुजगलितकरान्तव्यालगत्कङ्कणाङ्कौ
मतिमहरतमुच्चैः पश्यतां विश्वनृणाम् ॥
अनुसरति जनौघे कौतुकव्याकुलाक्षे
किमपि कृतनिनादं व्याहसन्तौ द्रवन्तौ ।
वलितवदनपद्मं पृष्ठतो दत्तदृष्टी
किमिव न विदधाते कौतुकं वासुदेवौ ॥
द्रुतगतिषु पतन्तावुत्थितौ लिप्तपङ्कौ
दिवि मुनिभिरपङ्कैः सस्मितं वन्द्यमानौ ।
द्रुतमथ जननीभ्यां सानुकम्पं गृहीतौ
मुहुरपि परिरब्धौ द्राग् युवां चुम्बितौ च ॥

(४५ । २—४)

देखिये, दूसरा एक चित्र 'कालीय'के फणोंपर नर्तन करनेवाले बालकृष्णको भट्टतिरि कैसे ताल-लयादिके साथ चित्रित करते हैं—

अधिरुह्य ततः फणिराजफणा-
न्ननृते भवता मृदुपादरुचा ।
कलशिञ्जितनूपुरमञ्जुमिलत्-
करकङ्कणसंकुलसंक्वणितम् ॥

(५५ । ५६५)

रासलीला करते हुए श्रीकृष्णका वर्णन और अन्य कवियोंने भी किया है । परंतु 'भट्टतिरि' के वर्णनमें दीखनेवाला चलनात्मक सरस और भावयुक्त मनोहर चित्र और कहीं मिलना दुष्कर है ।

वेणुनादकृततानदानकलगानरागगतियोजना-
लोभनीयमृदुपादपातकृततालमेलनमनोहरम् ॥

(६९ । ७०१)

आगे जाकर उस नृत्यकी पारम्यदशामें स्वर्गके तेजः-पुञ्ज भी अवाक् रह जाते हैं ।

गानमीश विरतं क्रमेण किल वाद्यमेलनमुपारतं
ब्रह्मसम्मदरसाकुलाः सदसि केवलं ननृतुरङ्गनाः ।
नाविदन्नपि च नीविकां किमपि कुन्तलीमपि च कञ्चुलीं
ज्योतिषामपि कदम्बकं दिवि विलम्बितं किमपरं ब्रुवे ॥

(६९ । ७०५)

भावकी पराकाष्ठा भट्टतिरि यहाँ दिखाते हैं—

व्रजमें आगे अक्रूरके सामने स्नान करके पीताम्बर और कुछ आभूषण पहने उन दोनों व्रजकिशोरोंकी आभा देखने लायक है—

सायन्तनाप्लवविशेषविविक्तगात्रौ
द्वौ पीतनीलरुचिराम्बरलोभनीयौ ।
नातिप्रपञ्चधृतभूषणचारुवेषौ
मन्दस्मितार्द्रवदनौ स युवां ददर्श ॥

(७२ । ७३७)

इस प्रकार जैसे एक चित्रकार अपने हृदय-तत्त्वमें गाढ़

रूपसे बने भावोंको चित्रके रूपमें प्रकट करता है, वैसे ही भट्टतिरि भी भगवान्के स्वरूपके हर एक भावको शब्द-चित्रमें अङ्कित कर देते हैं।

भावात्मक कवि

'नारायणीयम्'के कविको भक्त, दार्शनिक, तत्त्व-चिन्तक आदि विभिन्न दृष्टिकोणोंसे देखा जा सकता है; फिर भी उनका सर्वोच्च स्थान एक सत्यान्वेषक, सौन्दर्यनिरीक्षक और भावात्मक कविके रूपमें है। मिथ्या सांसारिक सुखोंके पथमें अबतक विचरण करते हुए कविको अपनी तीक्ष्ण अनुभूतियोंके द्वारा मिली कोई दीप्ति सत्यके मार्गपर पदार्पण करनेके लिये उनकी आँखें खोलनेमें समर्थ हुई। तत्पश्चात् जो प्रयाण शुरू हुआ, उसने मिथ्याकी अनुभूतियोंसे परे सत्य स्वरूपके दर्शन पानेमें उनकी सहायता की। उन्हीं सौन्दर्यानुभूतियोंका एक मनोहर आविष्करण है—'नारायणीयम्'।

यह तो साधारण घटना है कि हृदय जिसको पानेके लिये लालायित रहता है, उसकी खोजमें उसके दर्शनमें और साक्षात्कारमें भावनासे भर जाता है। सत्यके अनुसंधानमें या ईश्वर-दर्शनके लिये लालायित हृदयमें होनेवाली भावनाकी अनुभूति ही है—भक्ति। भट्टतिरि सत्यान्वेषक तो थे ही। साथ ही कवि भी। भक्तका आत्माविष्करण सत्यस्वरूपी ईश्वरके स्तोत्रके रूपमें बन जाता है। कविता तो कविका आत्माविष्करण है ही। इस प्रकार 'नारायणीयम्' एक स्तोत्रग्रन्थ होनेके साथ-साथ एक श्रेष्ठ काव्यग्रन्थ भी बन गया।

यदि भट्टतिरि एक भावात्मक कवि न होते तो 'नारायणीयम्' की भक्ति पाठकोंको इस प्रकार अपने वशमें न कर पाती। कविता और भक्ति दोनोंका अनुरञ्जित सम्मिलन ही इस ग्रन्थका सर्वाङ्गीण सौन्दर्य और वैशिष्ट्य है।

भक्ति-परवशता

भट्टतिरि भक्तिकी सर्वतोमुखी उत्कृष्टताको प्रतिपादित कर लेनेके बाद ही अपना काव्य-कर्म आरम्भ करते हैं। पहले और दूसरे दशकमें भगवान्के सौन्दर्यके रसात्मक दिव्य बिम्बके दर्शनसे हृदयमें होनेवाली शान्तिको भावनायुक्त मधुर भाषामें जब अभिव्यक्त करते हैं तो पाठक भक्तिकी परम रम्यतामें ओतप्रोत हो जाता है। दूसरे दशकके अन्तमें कर्मयोग और ज्ञानयोगकी अपेक्षा भक्तियोगको ही उच्च सिद्ध करते हैं। कर्मयोगका फल चिरकालसे ही प्राप्त होता है। ज्ञानयोग तो इन्द्रियज्ञानसे परे होनेके कारण मनमें उसको समझ लेना दुष्कर है। इसलिये कवि भट्टतिरि 'भक्तियोग ही श्रेष्ठ है' ऐसे निगमनपर पहुँच जाते हैं। कहते हैं—

त्वत्प्रेमात्मकभक्तिरेव सततं स्वादीयसी श्रेयसी।

इस प्रकार जब वे भक्तिको ही अपने चलने लायक मार्ग बना लेते हैं, तब भगवान्से अधिक-से-अधिक भक्ति होनेकी प्रार्थना करते हैं और तबतक हृदयमें बँधा पड़ा शोक, विकार अनर्गल प्रवाहित होता है। तीसरे दशकमें हम इसे पा लेते हैं।

पठन्तो नामानि प्रमदभरसिन्धौ निपतिताः
स्मरन्तो रूपं ते वरद कथयन्तो गुणकथाः।
चरन्तो ये भक्तास्त्वयि खलु रमन्ते परमसूनहं
धन्यान्मन्ये समधिगतसर्वाभिलषितान्॥
(३।२१)

सच्चे भक्तोंकी प्रशंसा करते हुए आरम्भ होनेवाला वह दशक 'भट्टतिरि' की उस समयकी मनोव्यथाको प्रकट करता है। साथ ही यह भी स्थिर कर देता है कि भगवद्भक्तिके बिना और कोई आश्रय उनके लिये नहीं है।

गदक्लिष्टं कष्टं तव चरणसेवारसभरेऽ-
प्यनासक्तं चित्तं भवति बत विष्णो कुरु दयाम्।
भवत्पादाम्भोजस्मरणरसिको नाम निवहा-
नहं गायं गायं कुहचन विवत्स्यामि विजने॥
(३।२२)

ऐसे विलाप आगे चलकर इस विश्वासमें परिणत हो जाते हैं कि भक्तिसे सारे दुःखोंका शमन हो सकता है, फिर अधिक-से-अधिक भक्तिके लिये प्रार्थना करते हैं।

भवद्भक्तिः स्फीता भवतु मम सैव प्रशमये-
दशेषक्लेशौघं न खलु हृदि संदेहकणिका।
(३।२५)

चौथे दशकमें कविकी प्रार्थना केवल यही है कि भगवान्की सेवा करने लायक स्वास्थ्य प्राप्त हो जाय।

कल्यतां मम कुरुष्व तावतीं
कल्यते भवदुपासनं यया।
(४।३१)

सातवाँ दशक भक्ति और तपस्याकी महिमाको परोक्ष रूपसे प्रतिपादित करनेवाला एक प्रौढ़ प्रबन्ध है ।

यही भक्तिरस आगे चलकर केवल प्रार्थनासे पृथक् होकर प्रत्येक कथाके साथ स्वानुभूतियोंसे भरे भावोंके रूपमें परिणत हो जाता है । शायद यही **'नारायणीयम्'** की आन्तरिक गरिमाको उत्कृष्ट बनानेका साधन हुआ हो । स्थान-स्थानपर आप देख पायेंगे कि कथाओं और कथा-पात्रोंके साथ भट्टतिरिका हृदय तादात्म्य प्राप्त कर लेता है । भगवान्की करुणापर उनको सुदृढ़ विश्वास है और अपनी भक्तिपर अपार स्थिरता थी । कहीं-कहीं भक्तिके प्यारसे कवि किसी भी तरह मुक्ति प्राप्त करनेवाले कथापुरुषोंके भाग्यपर जलते-से लगते हैं और विलाप भी करते हैं कि अपनेको भी वह भाग्य प्राप्त हो जाय । भगवान्पर अटल भक्ति करके तादात्म्य प्राप्त करनेवाली गोपियोंकी कथा कहते समय भट्टतिरिका कथन देखिये ।'

'परमिमा ननु धन्यधन्याः ।'

(६५ । ६६५)

व्रजमें जाते हुए अक्रूर जब नन्दकिशोरके चरण-चिह्नोंसे अङ्कित मिट्टीपर लोटते हैं, तब उनको देखते हुए कवि कहते हैं ।

किं ब्रूमहे बहुजना हि तथापि जाता
एवं नु भक्तितरला विरलाःपरात्मन् ।

(७२ । ७३४)

यह भी कविके हृदयकी जो लालसा है, उसकी प्रतिध्वनि है । उन गोपियोंका, जो माधुर्य भक्तिसे भगवान्को प्राप्त कर लेती हैं, वर्णन करते समय भट्टतिरिका कथन देखिये—

जारात्मना न परमात्मतया स्मरन्त्यो
नार्यो गताः परमहंसगतिक्षणेन ।
तं त्वां प्रकाशपरमात्मतनुं कथंचि-
च्चित्ते वहन्नमृतमश्रममश्नुवीय ॥

(६५ । ६६६)

दस अवतारोंमें श्रीकृष्ण अवतारको भट्टतिरि प्रधानता देते हैं । उनका दृढ़ विश्वास है कि इस अवतारके द्वारा ही एक साधारण मानव ईश्वरको निकटसे जान सकता है और उससे प्रेम निभा सकता है । बड़ी ही विचित्र और रसगर्भ हैं—ये लीलाएँ । कृष्णलीलाका महत्त्व यह है कि उसमें न केवल सौहार्द, स्नेह, अनुरागसे ही, अपितु भीति और द्वेषसे भी मुक्ति प्राप्त की जा सकती है । भट्टतिरिका कहना है—

सोऽयं कृष्णावतारो जयति तव विभो यत्र सौहार्दभीति-
स्नेहद्वेषानुरागप्रभृतिभिरतुलैरश्रमैर्योगभेदैः ।
आर्तिं तीर्त्वा समस्तामभृतपदमगुस्सर्वतः सर्वलोकाः
स त्वं विश्वार्तिशान्त्यै पवनपुरपते भक्तिपूर्त्यै च भूयाः ॥

(८८ । ९११)

अन्तके दशकमें भट्टतिरि साक्षात् विष्णुके रूपका दर्शन कर ही लेते हैं, और तब जाकर उनकी भक्ति अपने अभीष्ट लक्ष्यपर पहुँच जाती है । उस तेजःपुञ्जके दर्शनमें **'पीयूषाप्लावितोऽहम्'** ऐसे वह कह उठते हैं । वह केवल वर्णन नहीं वरं हृदयके भाव कल्लोलकारिणी एक संगीत-मय सरिता ही है—

भट्टतिरि और एजुत्तच्छन

(एजुत्तच्छन मलयालम् भाषाके प्रसिद्ध कवि हैं । उन्होंने मलयालम् भाषामें रामायण लिखी है और वे मलयालम् कविताके जनक माने जाते हैं)

कवितामें भक्तिरसकी प्रधानताको लेकर जब हम भट्टतिरिके बारेमें चर्चा करते हैं तब केरलके और दो भक्त कवियोंकी याद अपने-आप आ जाती है । वे हैं पुन्तानम् नम्बूद्री, (पुन्तानम् नम्बूद्री केरल भाषाके संत कवि हैं, इनमें पाण्डित्य प्रौढ़ता नहीं । 'ज्ञानपाना' इनकी उत्कृष्ट दार्शनिक कविता है ।) और एजुत्तच्छन, पुन्तानम् और भट्टतिरि 'गुरुवायूर'में मिले थे । पाण्डित्यकी तुलनामें भले ही 'पुन्तानम्' भट्टतिरिके समान नहीं माने जा सकते हैं, पर भक्तिकी दृष्टिसे वे भट्टतिरिसे भी उच्च स्तरपर हैं । उनकी 'ज्ञानपाना', 'संतानगोपाल' और 'कर्णामृत' इसके प्रमाण हैं । केरलीय जनतामें एक साधारण विचारधारा प्रचलित है कि भट्टतिरिमें भक्तिकी अपेक्षा पाण्डित्य अधिक था, यह ठीक नहीं । भट्टतिरिमें भी भक्तिसरिता उतनी ही प्रबल थी, जितना 'पुन्तानम्'में; पर भट्टतिरिकी भक्ति-सरिता पाण्डित्यसे युक्त थी और उसको समझनेके लिये भी थोड़े अधिक पाण्डित्यकी आवश्यकता है ।

पर एजुत्तच्छनकी तुलना दूसरे प्रकारकी है। यहाँ हम दो समशीर्ष व्यक्तियोंको देखते हैं। भले ही एजुत्तच्छनने केरल भाषामें कविता की, पर उनकी लेखनीसे निकली केवल कविता संस्कृतसे पुष्ट हुई। भक्तिमें भी वे भट्टतिरिसे कम न थे, पर अन्तर केवल इतना है कि एजुत्तच्छन भक्तिप्रवाहमें सराबोर हो कभी-कभी कथासूत्रको छोड़-सा देते हैं, पर भट्टतिरि उस स्थितिमें भी एक सिद्धहस्त कलाकार हैं। कथासूत्र उनके हाथमें सदा सुरक्षित रहता है। एजुत्तच्छनके-जैसे वाच्यरीतिमें न होकर व्यंग और ध्वन्यात्मक है भट्टतिरिकी भक्ति।

क्या वह सकाम भक्ति थी ?

ऐसा कहा जा सकता है कि भट्टतिरिकी भक्ति सकाम थी, पर यह एक अर्धसत्य है। वास्तवमें निष्काम भक्ति एक सुदूर ध्येय है और उसको प्राप्त कर मानव निर्वाण प्राप्त कर लेता है, वह फिर भौतिक जीवन व्यतीत नहीं करता। पर भट्टतिरि जीवन्मुक्त न थे, यही कारण है कि वे 'गुरुवायूर'में आकर एक स्तोता और प्रार्थी बने। उनका दृढ़ विश्वास था कि अन्तस्तलसे भगवान्की भक्ति की जाय तो सांसारिक दुःखोंसे छुटकारा मिल सकता है। इस दृढ़ताके साथ लिखनेसे ही 'नारायणीयम्' एक भक्तियुक्त काव्य बना। यदि वह निर्गुण ब्रह्मकी उपासना करनेवाला एक स्तोत्रग्रन्थ बन गया होता तो उसको एक काव्य-ग्रन्थकी दृष्टिसे देखनेकी नौबत ही न आती।

भगवान्के सामने चिरौरी

भट्टतिरिके ऊपर एक ऐसी भी अंगुली उठायी जाती है कि वे अपनी रुग्णतासे मुक्ति पानेके लिये भगवान्के समक्ष चिरौरी करने गये थे। पर इसका खण्डन करते हुए कुछ लोगोंने लिखा है कि रोगका तात्पर्य शारीरिक रोग नहीं, अपितु प्रापञ्चिक (भव-) रोग है। जो भी हो, इसके लिये इतनी दूर जानेकी आवश्यकता नहीं। शारीरिक रोग भी हो तो उसके शमनके लिये भगवान्के समक्ष याचना करना क्या कम महत्त्वका है ?

एक स्वामीके समक्ष अपना काम बनानेके लिये विनती करनेवाले एक नौकरका स्थान भट्टतिरिको देकर ही ये लोग उनकी टीका करते हैं। परंतु अपनी सारी हस्ती भगवान्को अर्पण किये भट्टतिरिको इस प्रकार आँकना ही गलत है। भले ही, उन्होंने अपने शारीरिक रुग्णताशमनार्थ ही प्रार्थना की हो, पर इसमें कोई गलती भी क्या है ? भगवान्को प्राप्त करनेके रास्तेमें उनकी शारीरिक रुग्णता ही, काँटा बनकर रही और उनकी प्रार्थना भी इतनी ही रही कि इस काँटेको दूर कर अपनेको योग-साधनका पात्र बना दें। वे शपथ लेते हैं कि शारीरिक रुग्णता दूर होनेपर वे योगचर्चाका अभ्यास करेंगे। वे यह नहीं सोचते कि शारीरिक रुग्णताको दूर कर फिर एक बार ऐहिक भोगोंमें लीन होंगे। भक्तिको तो वे—

'त्वत्प्रेमात्मकभक्तिरेव सततं स्वादीयसी श्रेयसी।'

—मानते हैं और अपनेको उस भक्तिसे पूर्ण बनानेकी प्रार्थना करते हैं। इस प्रकार देखें तो उनपर आरोपित 'सकामभक्ति'का दोष दूर हो जायगा। यदि भगवान्के सायुज्य पदवीकी चाह करना ही सकाम भक्ति है, तो उपनिषदोंके रचयिताओंको लेकर श्रीशंकराचार्यतकके मनीषियोंकी भक्तिको सकाम भक्ति कहना पड़ेगा।

भागवतके संक्षिप्तरूपकी स्थितिमें

'नारायणीयम्' भागवतका एक संक्षिप्त ग्रन्थ ही नहीं, वरं उसमें भागवतके अन्तर्गत समस्त तत्त्वचिन्तन भी भर दिये गये हैं। वे स्वयं दार्शनिक तो थे ही, इसलिये तत्त्वोंको अभिव्यक्त करनेमें भी अपनी दक्षता दिखलायी है। अन्तिम दस दशक पूरे-के-पूरे दार्शनिक हैं। दार्शनिक भट्टतिरिकी दक्षता उसमें स्पष्ट प्रस्फुटित हुई है। 'भागवत'के संक्षिप्त ग्रन्थके रूपमें 'नारायणीयम्'—जैसा एक संग्रहग्रन्थ संस्कृतमें दूसरा नहीं है, जिसमें काव्यकलाकी पुष्कलता है, दार्शनिक प्रौढ़ता है और है कविका अन्तर्यामी व्यक्तित्व। और भाषाओंमें होगा कि नहीं, यह विचारणीय है।*

---

* 'नारायणीयम्'का हिंदीमें अनुवाद हो चुका है। भगवान्की इच्छा हुई तो गीताप्रेसके द्वारा उसका प्रकाशन हो सकता है।
—सम्पादक

श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

हरिनामपरा ये च घोरे कलियुगे नराः। त एव कृतकृत्याश्च न कलिर्बाधते हि तान्॥
न देशकालनियमो न शौचाशौचनिर्णयः। परं संकीर्तनादेव राम रामेति मुच्यते॥
नामसंकीर्तनं प्रोक्तं कृष्णस्य प्रेमसम्पदि। बलिष्ठं साधनं श्रेष्ठं परमाकर्षमन्त्रवत्॥
सर्वरोगोपशमनं सर्वोपद्रवनाशनम्। शान्तिदं सर्वरिष्टानां हरेर्नामानुकीर्तनम्॥
आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन्। ततः सद्यो विमुच्येत यद्बिभेति स्वयं भयम्॥

इस घोर कलियुगमें जो मनुष्य हरिनामकी शरण ले चुके हैं, वे ही कृतकृत्य हैं, कलि उन्हें बाधा नहीं देता। नाम-कीर्तनमें देशकालका नियम नहीं है, शौचाशौचका निर्णय भी आवश्यक नहीं है। केवल 'राम' 'राम' ऐसा कीर्तन करनेसे ही परम मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है। श्रीकृष्णका नाम-कीर्तन प्रेमसम्पत्तिकी प्राप्तिके लिये प्रबल और श्रेष्ठ साधन कहा गया है। वह श्रेष्ठ आकर्षण-मन्त्रकी भाँति चित्तको अत्यन्त आकृष्ट करनेवाला है। श्रीहरिके नामका बार-बार कीर्तन समस्त रोगोंको शान्त करनेवाला, सारे उपद्रवोंका नाशक तथा समस्त अरिष्टोंकी शान्ति करनेवाला है। घोर संसार-बन्धनमें पड़ा हुआ मनुष्य विवश होकर भी यदि भगवन्नामका उच्चारण करता है तो वह तत्काल इस बन्धनसे मुक्त हो जाता है और उस अभय पदको प्राप्त होता है, जिससे भय स्वयं भय मानता है।

आजके इस आधि-व्याधि, रोग-शोक, कलह-क्लेश, द्रोह-द्वेष, वैर-हिंसा, अकाल, अवर्षा, अतिवर्षा, अनाचार, अत्याचार, भ्रष्टाचार, स्वेच्छाचार आदिसे पीड़ित तथा भगवद्विमुखतारूप दुर्भाग्यसे युक्त मानवको इन सभीसे सहज मुक्त कर सर्वाङ्गीण सुखी बनानेके लिये तथा मनुष्य-जीवनके लक्ष्य मोक्ष या भगवान्‌के प्रेमकी प्राप्ति करानेके लिये एकमात्र 'भगवन्नाम' ही सरल साधन है। इस समय चारों ओर अशान्तिके बादल छाये हैं, युद्धकी भीषणता सिरपर सवार है। इसीलिये 'कल्याण'के भगवद्विश्वासी पाठक-पाठिकाओंसे प्रतिवर्षकी भाँति प्रार्थना की जाती है कि वे कृपापूर्वक स्वयं प्रेमके साथ अधिक-से-अधिक नाम-जप करें तथा प्रेमपूर्वक प्रेरणा करके दूसरोंसे करायें। यही परम हित है। गत वर्षकी भाँति इस वर्ष भी—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इस उपर्युक्त १६ नामवाले परम पवित्र मन्त्रके २० (बीस) करोड़ जपके लिये ही प्रार्थना की जाती है। नियमादि इस प्रकार हैं—

१–यह श्रीभगवन्नाम-जप जपकर्ताके, धर्मके, विश्वके—सबके परम कल्याणकी भावनासे हो किया-कराया जाता है।

२–इस वर्ष इस जपका समय कार्तिक शुक्ला १५ मंगलवार सं० २०२५ (५ नवम्बर १९६८) से आरम्भ होकर चैत्र शुक्ला १५ बुधवार सं० २०२६ (२ अप्रैल १९६९) तक रहेगा। जप इस समयके बीच किसी भी तिथिसे करना आरम्भ किया जा सकता है, पर इस प्रार्थनाके अनुसार उसकी पूर्ति चैत्र शुक्ला १५ सं० २०२६ को समझनी चाहिये। पाँच महीनेका समय है। उसके आगे भी जप किया जाय, तब तो बहुत ही उत्तम है। करना चाहिये ही।

३–सभी वर्णों, सभी जातियों और सभी आश्रमोंके नर-नारी, बालक-वृद्ध-युवा इस मन्त्रका जप कर सकते हैं।

४–एक व्यक्तिको प्रतिदिन 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥'—इस मन्त्रका कम-से-कम १०८ बार (एक माला) जप तो अवश्य करना चाहिये। अधिक कितना भी किया जा सकता है।

५–संख्याकी गिनती किसी भी प्रकारकी मालासे, अँगुलियोंपर अथवा किसी अन्य प्रकारसे रक्खी जा सकती है।

६–यह आवश्यक नहीं है कि अमुक समय आसनपर बैठकर ही जप किया जाय। प्रातःकाल उठनेके समयसे लेकर रातको सोनेतक चलते-फिरते, उठते-बैठते और काम करते हुए—सब समय इस मन्त्रका जप किया जा सकता है।

७–बीमारी या अन्य किसी कारणवश जप न हो सके और क्रम टूटने लगे तो किसी दूसरे सज्जनसे जप करवा लेना चाहिये। पर यदि ऐसा सम्भव न हो तो स्वस्थ होनेपर या उस कार्यकी समाप्तिपर प्रतिदिनके नियमसे अधिक जप करके उस कमीको पूरा कर लेना चाहिये।

८–घरमें सौरी-सूतकके समय भी जप किया जा सकता है।

९–स्त्रियाँ रजोदर्शनके चार दिनोंमें भी जप कर सकती हैं, किंतु इन दिनोंमें उन्हें तुलसीकी माला हाथमें लेकर जप नहीं करना चाहिये। संख्याकी गिनती किसी काठकी मालापर या किसी और प्रकारसे रख लेनी चाहिये।

१०–इस जप-यज्ञमें भाग लेनेवाले भाई-बहिन ऊपर दिये हुए सोलह नामोंके मन्त्रके अतिरिक्त अपने किसी इष्ट-मन्त्र, गुरु-मन्त्र आदिका भी जप कर सकते हैं। पर उस जपकी सूचना हमें देनेकी आवश्यकता नहीं है। हमें सूचना केवल ऊपर दिये हुए मन्त्र-जपकी ही दें।

११–सूचना भेजनेवाले लोग जपकी संख्याकी सूचना भेजें, जप करनेवालोंके नाम आदि भेजनेकी भी आवश्यकता नहीं है। सूचना भेजनेवालोंको अपना नाम-पता स्पष्ट अक्षरोंमें अवश्य लिखना चाहिये।

१२–संख्या मन्त्रकी होनी चाहिये, नामकी नहीं। उदाहरणके रूपमें यदि कोई 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥' इस मन्त्रकी एक माला प्रतिदिन जपे तो उसके प्रतिदिनके मन्त्र-जपकी संख्या एक सौ आठ (१०८) होती है, जिनमेंसे भूल-चूकके लिये आठ मन्त्र बाद देनेपर १०० (एक सौ) मन्त्र रह जाते हैं। अतएव जिस दिनसे जो बहिन-भाई मन्त्र-जप आरम्भ करें, उस दिनसे चैत्र शुक्ला पूर्णिमातकके मन्त्रोंका हिसाब इसी क्रमसे जोड़कर सूचना भेजनी चाहिये।

१३–सूचना प्रथम तो मन्त्र-जप आरम्भ करनेपर भेजी जाय, जिसमें चैत्र-पूर्णिमातक जितना जप करनेका संकल्प किया गया हो, उसका उल्लेख रहे तथा दूसरी बार चैत्र-पूर्णिमाके बाद, जिसमें जप प्रारम्भ करनेकी तिथिसे लेकर चैत्र-पूर्णिमातक हुए कुल जपकी संख्या हो।

१४–जप करनेवाले सज्जनोंको सूचना भेजने-भिजवानेमें इस बातका संकोच नहीं करना चाहिये कि जपकी संख्या प्रकट करनेसे उसका प्रभाव कम हो जायगा। स्मरण रहे—ऐसे सामूहिक अनुष्ठान परस्पर उत्साह-वृद्धिमें सहायक बनते हैं।

१५–सूचना संस्कृत, हिंदी, राजस्थानी, मराठी, गुजराती, बंगला, अंग्रेजी अथवा उर्दूमें भेजी जा सकती है।

१६–सूचना भेजनेका पता—'नाम-जप-विभाग,' 'कल्याण'-कार्यालय, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

प्रार्थी—चिम्मनलाल गोस्वामी

सम्पादक–'कल्याण', गोरखपुर

भगवन्नाम-जप

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

हर्षकी बात है कि हमारी प्रार्थनाके अनुसार 'कल्याण'के पाठक-पाठिकाओंने तथा भगवन्नामप्रेमी सज्जनों और माताओंने कृपापूर्वक स्वयं भगवन्नामका जप किया तथा दूसरोंको मङ्गलमयी प्रेरणा देकर करवाया। यद्यपि पिछले वर्षसे इस बार जपकी संख्या कम हुई, पर बढ़ते हुए अविश्वासके प्रवाहमें यह भी कम नहीं है। अबकी बार और अधिक करें-करावें—ऐसी प्रार्थना है। नाम-प्रेमियोंके उत्साहसे इस बार—

२३,५१,९२,८०० (तेईस करोड़, इक्यावन लाख, बानवे हजार, आठ सौ) मन्त्र-संख्याका जप हुआ है। जिनकी नाम-संख्या होती है—

३,७६,३०,८४,८०० (तीन अरब, छिहत्तर करोड़, तीस लाख, चौरासी हजार, आठ सौ)

सब मिलाकर ९९६ स्थानोंकी सूचना नोट हुई है। सम्भव है कुछ नोट होनेसे रह गयी हों और कुछ सज्जनोंने भेजी ही न हो। स्थानोंके नाम आगामी अङ्कमें प्रकाशित होंगे।

हमलोग बड़े हर्षके साथ नाम-जप करने-करानेवालोंके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

श्रीमद्भागवतकी पुरानी प्रतिमें प्राप्त श्रीशुकदेवजीके वचन हैं—

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम्।
स्मरन्ति ये स्मारयन्ति हरेर्नाम कलौ युगे॥

'राजा परीक्षित्! मनुष्योंमें वे भाग्यशाली तथा निश्चय ही कृतार्थ हो चुके हैं जो कलियुगमें भगवान्‌का नाम-स्मरण करते और दूसरोंसे करवाते हैं।'

व्यवस्थापक—**'नाम-जप-विभाग,'**
गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीकृष्णावतार

(रचयिता—पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम')

देवोंको दुलार वसुधाको भारहार मिला
संसृति असारको प्रसार सौख्यसारका।
साधिका कुमारियोंको नन्दका कुमार पति
राधिकाको प्यार मिला प्यारे प्राणाधारका॥
कूबरीको रूप मिला भूप मिला द्वारकाको
कंस-से नृशंसको भी मार्ग मुक्ति-द्वारका।
नन्दको आनन्द यशुदाको मिला नन्दन था
अकथ अमंद लाभ कृष्ण-अवतारका॥

कामके पत्र

(१)

पूँजीवाद पश्चिमकी देन है

सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। उत्तरमें निवेदन है कि हमारे यहाँ मानवमात्रके लिये चार पुरुषार्थोंका विधान है। वे पुरुषार्थ हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। पूँजीवाद, मजदूरवाद आदि वर्ग हैं ही नहीं। सभी मानव आवश्यक अर्थ उपार्जन करें और सभी सेवा करें। सभी संसारमें जीनेके लिये धर्मसम्मत कामका यथावश्यक सेवन करें और सभीका लक्ष्य मोक्ष हो। फिर, 'अर्थ और काम' के लिये जीवनका केवल चौथा हिस्सा ही रहे—तीन हिस्से त्यागके रहें। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—ये चार आश्रम हैं। इनमें एक गृहस्थके सिवा तीनों त्यागके हैं। आजका युग और आजकी पाश्चात्त्य संस्कृतिका ध्येय है—केवल भोगार्जन तथा भोग-सुख। इसमें त्यागको स्थान नहीं है। यहाँ त्याग भी कहीं होता है तो वह भोग-प्राप्तिके लिये। हमारे यहाँ गृहस्थाश्रममें भोग था, पर वह भी था त्यागमूलक तथा त्यागके लिये ही। **'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः—'** हमारी वेदवाणी है। आजका समाजवाद, पूँजीवाद, साम्यवाद, श्रमवाद—सभी इस भोगको आदर्श माननेवाली संस्कृतिकी ही अपवित्र देन है। इसीलिये समाजवादके तथा साम्यवादके नामपर पूँजीवादका संगठन होता है। और परस्पर वर्ग-संघर्ष तथा कलह-विनाश चलते रहते हैं। भारत भी आज इसी व्यामोहमें ग्रस्त है। जबतक यह व्यामोह नहीं छूटेगा, विरोध, हिंसाक्लेश और फलतः दुःख बढ़ेगा ही। असली साम्यवाद है—सबमें एक आत्माको या एक भगवान्‌को देखकर सबका यथायोग्य सम्मान, हित करना तथा सबको सुख पहुँचाना।

> **खं वायुमग्निं सलिलं महीं च**
> **ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।**
> **सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं**
> **यत् किंच भूतं प्रणमेदनन्यः॥**
> (श्रीमद्भा० ११। २। ४१)

शेष भगवत्कृपा

(२)

गर्भ-निरोधसे हानि

सादर यथायोग्य। आपका कृपापत्र मिला। प्रजानियोजन आदिके नामपर गर्भनिरोध और वन्ध्याकरणके जितने प्रयास चल रहे हैं और यह कहा जा रहा है कि इससे अन्न खानेवालोंकी संख्या घट जायगी तो देश समृद्ध हो जायगा, निरा भ्रममात्र है। अन्न देनेवाले जगन्नियन्ता अनन्त ब्रह्माण्डोंके भरण-पोषणकर्ता भगवान् हैं—वे चाहेंगे तो अनन्त जीवोंका पेट भरता रहेगा। और उनके न चाहनेपर अल्प-संख्यक लोग भी साधनरहित होकर भूखों मर जायँगे।

गर्भनिरोधके साधनोंकी चर्चाने हमारी संस्कृतिकी एक आदर्श लज्जाशीलताको खो दिया है। आज पिता-पुत्री भी इस विषयमें चर्चा करते हैं और साथ-साथ अस्पतालोंमें जाते हैं। इसका परिणाम कितना शोचनीय हो सकता है, ध्यान देनेकी बात है। दूसरे, इससे संतानवृद्धि या अवैध संतान-उत्पत्तिका भय न रहनेसे व्यभिचार बहुत बड़ी मात्रामें बढ़ जायगा। तीसरे, धनीवर्गमें जो पैसेकी बचत होगी, उससे उनमें मौज-शौककी रुचि बढ़ेगी और इसके लिये मौज-शौककी सामग्रियोंकी अधिक माँग होनेसे दूसरे-दूसरे क्षेत्रोंमें तंगी आ जायगी। चौथे, मुसल्मान तो धर्मकी आपत्ति बताकर गर्भनिरोध करायेंगे नहीं। हिन्दू ही इसके शिकार होंगे। फलतः हिन्दुओंकी संख्या घटेगी और मुसल्मानोंकी बढ़ेगी, जो नित्य नये पाकिस्तानकी योजनाका कारण बनेगी। हमारे एक स्थानीय डाक्टर मित्र, जो मुसल्मानोंमें जाते हैं, बता रहे थे कि उनकी संख्या बहुत तेजीके साथ बढ़ी जा रही है और वे इसके लिये विशेष सचेष्ट भी हैं। पाँचवें, इससे विलासियोंकी संख्या बढ़ेगी और विलासी लोग न तो देशके लिये त्याग कर सकते हैं, न बलिदान, और न वैसे कामसुखभोगी लोग चीन, पाकिस्तानके मुकाबलेमें रणभूमिमें ही प्राण देनेको तैयार होंगे। वहाँ तो रणभेरीके समय भी कामसुख बढ़ानेवाला सुर ही अलापा जायगा। इससे देशकी स्वतन्त्रताको खतरा हो जायगा। छठे, विलासपरायण लोग भगवान्‌से सम्बन्ध त्यागकर भोगोंमें ही जीवन बिताकर मानव-जीवनके परम ध्येय भगवत्प्राप्तिसे वञ्चित रहकर नरकोंमें ही जायँगे।

इस प्रकार इससे कई प्रकारकी हानि होनेकी पूरी सम्भावना है। शुद्धदेशहितकी नीयतसे इसका प्रचार-प्रसार करनेवालोंकी नीयतपर मैं दोष नहीं लगाता। उनपर श्रद्धा करता हूँ। पर मेरा उनसे निवेदन है कि वे गम्भीरताके साथ इसके परिणामपर अवश्य विचार करें।

(३)

हमारी विवशता

सादर हरिस्मरण—पत्र मिला ! कामके पत्र शीर्षकमें दो बहिनोंकी ऐसी चर्चा छपी थी कि दहेजके कारण उनका विवाह नहीं हो पा रहा है। इसपर कुछ पत्र ऐसे विभिन्न लोगोंके आये थे कि वे बिना दहेजके विवाह करनेको प्रस्तुत हैं । उन बहनोंने नाम-पते लिखे नहीं थे। अतएव यह छाप दिया गया था कि वे नाम-पते लिख दें तो जिन बिना दहेजके विवाह करनेवालोंके पत्र आये हैं, उनको उनका—नाम-पता पत्र-व्यवहारके लिये बता दिया जाय।

इस बातके प्रकाशनके बाद तो ऐसे लड़के-लड़कियों तथा उनके अभिभावकोंके बहुत-से पत्र हमारे पास आ रहे हैं, जो विवाह करनेको बड़े उत्सुक हैं। बात यह है कि दहेजके अभावसे कन्याओंका विवाह रुका रहता है, समाजमें यह दोष न रहे, इस अभिप्रायसे उपर्युक्त बातें छाप दी गयी थीं। वैसे न तो हमारे पास ऐसा कोई विभाग है, न ऐसे काम करनेवाले आदमी हैं और न सीमित क्षेत्रमें एक खास आध्यात्मिक लक्ष्यको लेकर काम करनेका उद्देश्य होनेसे हमलोग अन्य कार्य कर ही सकते हैं। हमारी सीमित शक्ति है, सीमित क्षेत्र है। इससे आगे क्षेत्र बढ़ाकर कुछ करनेकी हमारी क्षमता ही नहीं है । अतएव विवाहसम्बन्धकी व्यवस्था करने-करानेका काम हमारे यहाँसे बिल्कुल नहीं हो सकेगा। न हम इसके लिये पत्रव्यवहार ही कर सकेंगे। अतएव आपसे और आपकी ही भाँति अन्य सभी महानुभावोंसे प्रार्थना है कि वे इस विषयमें 'कल्याण-सम्पादक'को पत्र न लिखें। हमारी इस विवशताके लिये क्षमा करें। शेष भगवत्कृपा।

महात्मा गाँधीजीका शताब्दी-महोत्सव

महात्मा गाँधी विश्वकी एक विभूति थे और उन्होंने समस्त विश्वको जो अहिंसा, सत्य तथा प्रेमका महान् संदेश दिया, पता नहीं, वह कबतक विश्वके मानव जब-जब अत्यन्त अशान्तचित्त एवं हिंसापरायण होकर दुखी होंगे और शान्ति-सुखमय जीवनके लिये प्रकाश-पथका अनुसंधान करेंगे, तब-तब उनको प्रकाशमय मार्ग दिखाकर सच्चे अर्थमें शान्त-सुखी करता रहेगा। गाँधीजीके इस महान् संदेशने भारतवर्ष तथा हिंदूधर्मका भी सिर ऊँचा कर दिया; क्योंकि गाँधीजी-सरीखे पुरुषको पुण्यभूमि भारतवर्ष और हिंदूधर्म ही उत्पन्न कर सका। इस दृष्टिसे गाँधीजी भारतके अपने हैं और इस प्रकारके अपने महान् पुरुषका शताब्दी-महोत्सव बड़े-से-बड़े रूपमें हमारे द्वारा मनाया जाय, यह सर्वथा आवश्यक, उचित और परमकर्तव्य है—यह सुनिश्चित है। परंतु महोत्सव होना चाहिये उन महात्माके जीवन-सिद्धान्तके अनुरूप ही। तभी वह उनका महोत्सव होगा। नहीं तो, उस महोत्सवके नामपर भी हम अपने किसी स्वार्थसाधनके लिये ही या अविवेकसे अभिभूत होकर यथेच्छाचार ही करेंगे।

सुना जाता है कि इस शताब्दी-समारोहके प्रदर्शनमें करोड़ों रुपये खर्च होंगे। रुपये हों और उन रुपयोंका सदुपयोग किया जाय—उनको सत्कार्यमें मुक्तहस्तसे व्यय किया जाय, यह तो सर्वसम्मत ही है; परंतु जहाँ देशमें अकाल पड़ा हुआ हो, लाखों-करोड़ों मनुष्य क्षुधापीड़ित हों, माँके पदपर प्रतिष्ठित गौएँ चारे-पानीके बिना मर रही हों, लोगोंको पहनने-खानेको पूरी सामग्री न मिलती हो—इस दशामें उस महात्माके नामपर, जिसने देशकी जनतामें वस्त्रका अभाव देखकर वस्त्र पहनना छोड़ दिया था और अन्नाभावसे पीड़ित लोगोंको देखकर जिसने खान-पानमें स्वयं महान् संयम स्वीकार करके सबको संयमकी शिक्षा दी थी, उस दरिद्रनारायणकी सेवाके व्रतमें व्रती पुरुषके शताब्दी-उत्सवके प्रदर्शनमें करोड़ों रुपये व्यय करना कदापि उचित नहीं कहा जा सकता। फिर हमारी सरकार तो रुपयोंके अभाव बताकर शराबबन्दी, जो महात्माजीका परम अभिप्रेत सिद्धान्त था, करनेमें भी अपनेको असमर्थ बता रही है, वह इस प्रकार रुपयोंको व्यर्थ बहा दे—यह कदापि न्याय नहीं है और इसमें न महात्माका वास्तविक सम्मान है। इन महात्मा गाँधीके शताब्दी-महोत्सवके पुण्य अवसरपर उनके भावों, विचारों तथा उपदेशोंके प्रचारके साथ जो कार्य करने अत्यन्त आवश्यक हैं और जिनको न करके देश उस महात्माका एक प्रकारसे तिरस्कार कर रहा है, उनमेंसे कुछका नीचे निर्देश किया जाता है—

प्रार्थना और नामधुन

महात्माजीके जीवनमें प्रार्थना और नामधुनको प्रधान स्थान था। वे इसको अपनी आत्माके समान समझकर इसका संरक्षण और सेवन करते थे। एक वार दक्षिणमें संध्या-प्रार्थना भूलसे रह गयी, इसपर उन्होंने बहुत दुःख तथा पश्चात्ताप किया था। रामधुनके विना वे अपना जीना मुश्किल मानते थे और कहते थे कि 'मैं अनुभवके आधारपर यह बात कहता हूँ कि भोजनके विना तो कई दिनोंतक रहा जा सकता है, लेकिन प्रार्थनाके विना एक क्षण भी मैं नहीं रह सकता।'

आज उसी रामधुन और प्रार्थनाकी अवहेलना करके हम उस महात्माका शताब्दी-महोत्सव मना रहे हैं!

त्याग और प्रेम

यह निश्चित है कि त्यागके विना विशुद्ध अहिंसा तथा प्रेम नहीं होता। इसीसे महात्माजीने अधिकार, पद तथा पैसेके त्यागको स्वयं स्वीकार किया था और वे सबको यही शिक्षा देते थे। आजकी देशकी स्थिति उससे सर्वथा विपरीत है। उदाहरणार्थ—अपनेको गाँधीजीका ही अनुयायी मानने और बतलानेवाले एक ही पार्टीके लोग कर्तव्य और देशसेवाके नामपर ही—देशको भूलकर, महात्माजीकी सारी शिक्षाको तिलाञ्जलि देकर केवल पैसे, पद और अधिकारके लिये जिस प्रकार निम्नस्तरपर उतरकर हिंसा-पूर्ण गंदी लड़ाई लड़ रहे हैं, वह सर्वथा लज्जाजनक है। ऐसे लोगोंको चाहिये कि महात्माजीका शताब्दी-उत्सव मनानेके साथ-साथ वे अपनेको महात्माजीका सच्चा अनुयायी बनावें; पैसा, पद और अधिकारका त्यागकर परस्पर प्रेम करें। तभी वे महोत्सव मनानेके यथार्थ अधिकारी होंगे।

गोरक्षा और जीवदया

स्वराज्य-प्राप्ति महात्माजीका एक मुख्य ध्येय था और उसके लिये वे मुसलमानोंकी सब शर्तें मानने और छूट देनेको तैयार थे; परंतु गोवधकी छूट उन्होंने नहीं स्वीकार की। उन्होंने कहा—'मैं स्वराज्यके लिये भी गोरक्षाका आदर्श नहीं छोड़ सकता।' और यह कहलवा दिया कि 'वह समझौता मुझको मान्य नहीं है, नतीजा चाहे जो कुछ भी हो। मैं बेचारी गायोंको इस तरह नहीं छोड़ सकता।' उन्हीं महात्माजीके अनुयायी बताये जानेवालोंके शासनमें आज पहलेकी अपेक्षा बहुत अधिक गोवध हो रहा है। देशकी आवाजकी अवहेलना की जा रही है, पर कानूनसे गोवंशकी हत्या बंद नहीं की जा रही है और नयी-नयी वैज्ञानिक पशु-हत्याशालाएँ खोलनेका आयोजन चल रहा है। फिर उसी महात्माकी शताब्दी मनायी जा रही है। शताब्दीके अवसरपर गोहत्या सर्वथा बंद करनेकी घोषणा कर दी जाय तो वास्तविक ऐतिहासिक शताब्दी-महोत्सव मनाया जायगा और इस महान् पुण्यसे देश सुख-समृद्धिसम्पन्न हो जायगा। हमारे नेतागण इसपर विचार करें।

सेवा, सादगी तथा भारतीय आचार

महात्माजीके उपदेश, आचरण और प्रभावसे लोग गरीबोंकी सेवामें लगे थे। विलासिताके जीवनको हटाकर तथा अपनी आवश्यकताएँ घटाकर देशके गरीबोंकी आवश्यकता पूरी करनेका प्रयास आरम्भ हो गया था। वेश-भूषामें खादीकी धोती, कुर्ता, टोपी—अत्यन्त सादगी आ गयी थी और खान-पानमें सादगी बढ़ने लगी थी। पर आजकी स्थिति इससे सर्वथा विपरीत है। हमारी इतनी आवश्यकता बढ़ गयी है कि अपने शरीर और नामकी सेवाकी ही पूर्ति नहीं हो पाती—तब गरीबोंकी सेवा कौन करे? खादीके बदले कोट, पेंट, नेकटाई जन-जनमें आ गयी है। अपने ही देशमें हम विदेशी हो गये हैं! कुछ निष्ठावाले लोगोंको छोड़कर आज खादी सादगीका आदर्श न होकर स्वार्थसाधनका निमित्त बन गयी है। मन तो पाश्चात्य पोशाकपर ही आसक्त है। विलासिता तथा अपना व्यक्ति-गत व्यय असीमताकी ओर जा रहा है। ये सभी आचरण महात्माजीके आदर्शके विरुद्ध हैं। इनको छोड़कर ही उनकी शताब्दी मनायी जाय तो सचमुच कर्तव्य-पालनके साथ ही वह परम शोभनीय कार्य होगा।

ऐसी ही राष्ट्रभाषा हिंदीका विरोध, अनुशासनहीनता, प्रान्तीयता, राजसी ठाट-बाट, भाषाजनित विरोध आदि और भी बहुत-सी अवाञ्छनीय बातें हैं, जो महात्माजीके आदर्शके विरुद्ध आज बड़े गौरवके साथ की जा रही हैं। उन सबका भी संशोधन होना चाहिये। वास्तवमें महात्माजीके आदर्शों-का अनुसरण ही उनका वास्तविक सम्मान है और वही उनका जीवन-महोत्सव है। शताब्दी बड़े समारोहसे अवश्य मनायी जाय, परंतु मनायी जाय महात्माजीके आदर्शोंके विरुद्ध आचरण छोड़कर उनके अनुकूल बनकर ही। यही वाञ्छनीय है और यही नम्र निवेदन है।

पढ़ो, समझो और करो

(१)

मानवमें देवत्वके दर्शन

आजके युगमें स्वार्थपरता, बेईमानी, हिंसा एवं अनैतिकता अपनी चरम सीमापर है। सबसे बड़ा दुःख तो यह है कि यह सब करके मनुष्य गर्व करता है। अपने तुच्छ स्वार्थकी पूर्तिके लिये आज मानव बड़े-से-बड़ा पाप करनेको तुरंत तैयार हो जाता है।

ऐसे स्वार्थप्रधान युगमें भी हमें यत्र-तत्र धर्मात्मा पुरुषोंके दर्शन होते हैं, जिसके फलस्वरूप सचाई, ईमानदारी एवं नैतिकताके प्रति हमारी आस्था दृढ़ होती है एवं सच्चे अर्थोंमें मानव बननेके लिये प्रेरणा मिलती है।

लगभग पंद्रह वर्ष पूर्वकी घटना है। राजस्थानप्रान्तके उदयपुर जिलेके एक गाँवमें रामगोपाल नामका एक ब्राह्मण नवयुवक रहता था। पुरोहितका कार्य करके वह जीविकोपार्जन करता था। एक बार वह घूमता हुआ बम्बई पहुँच गया। बम्बईमें राजस्थानके ही सेठ भगवानदयाल माहेश्वरी भी रहते थे। सेठजीके पूर्वज लगभग पचास वर्ष पूर्व बम्बई व्यापारके सिलसिलेमें गये थे।

उसके पश्चात् वहीं बस गये थे।

वे हीरे-जवाहरातका व्यापार करते थे। सेठ भगवानदयाल स्वयं एक अच्छे जौहरी थे।

सेठजीकी प्रवृत्ति धार्मिक थी। दान-पुण्य करते ही रहते थे। घरका आलीशान बँगला था, मोटर थी। इस प्रकार वे सुखी-सम्पन्न थे।

सेठ भगवानदयाल रामगोपाल और उसके परिवारको जानते थे। रामगोपालके पिता सेठजीके बाल-सहपाठी थे। सेठजीने रामगोपालकी अच्छी आवभगत की। वह सेठजीकी दूकानपर ही नौकर हो गया। रामगोपाल ईमानदारीसे कार्य करता था।

एक दिन उसको व्यापार करनेकी सूझी। उसने दस हजार रुपये सेठजीसे उधार लिये और एक अन्य व्यक्ति मोहनलालके साझेमें कपड़ेकी दूकान खोल ली। भाग्यने साथ दिया। व्यापार अच्छा चला। काफी लाभ हुआ और दोनों मालामाल हो गये।

रामगोपालने सेठजीके रुपये लौटा दिये और सेठजीकी नौकरी भी छोड़ दी। अब वह अपनी दूकानपर ही बैठने लगा।

रामगोपालने अपना परिवार भी बम्बई बुलवा लिया और सुखपूर्वक रहने लगा।

अचानक भाग्यने पलटा खाया। रामगोपालका बड़ा पुत्र बीमार हो गया। पत्नी भी संग्रहणीके रोगसे पीड़ित हो गयी। दोनोंके इलाजमें उसने काफी रुपये खर्च किये, तब जाकर वे स्वस्थ हुए।

विपत्तिका अभी अन्त नहीं हुआ था। एक रात्रिको अकस्मात् कपड़ेके गोदाममें आग लग गयी। पाँच लाख रुपयेका कपड़ा जलकर राख हो गया।

रामगोपाल एवं मोहनलाल सिर धुनकर बैठ गये। विधिके विधानको कौन टाल सकता था। बैंकके सब रुपये बीमारीमें उठ चुके थे। कर्जदाता तकाजा करने लगे। वह भी कबतक इन्कार कर सकता था, साख उठ जानेका प्रश्न भी था।

मोहनलाल धनवान् व्यक्ति था। उसका कई और फर्मोंमें हिस्सा था। रामगोपालके तो एक यही काम था और इसमें वह तबाह हो गया।

रामगोपाल मोहनलालके पास गया और उससे रुपये उधार माँगे। मोहनलालने रुपये देनेसे इन्कार कर दिया और उससे व्यापारका सम्बन्ध भी तोड़ लिया।

निराश और हतोत्साहित रामगोपालका अब केवल ईश्वर ही एकमात्र सहारा था।

एक दिन वह खिन्न-मनसे बैठा था कि सेठ भगवानदयालने उसे नौकरके साथ बुलवा भेजा।

रामगोपाल सेठजीके घरपर गया।

सेठ भगवानदयालने उसे प्रेमपूर्वक पास बैठाया और सान्त्वनाभरे शब्दोंमें कहा—'बेटा रामगोपाल! घबराओ

मत ! धैर्य रक्खो ! सुख-दुःख तो आते ही रहते हैं। विपत्तिका साहसपूर्वक सामना करो।

'तुम सोच रहे होओगे कि मैंने तुमको क्यों बुलाया है? इस समय तुम्हारी सहायता करना मेरा कर्तव्य है। तुम्हारे पिता मेरे अच्छे मित्र थे।

भाग्यने जब तुम्हारा साथ दिया, तुम लखपती बन गये, आज भाग्यने तुम्हारा साथ छोड़ दिया है और तुम दाने-दानेको मोहताज हो रहे हो।

'तुम्हारे सिरपर पचास हजारका कर्जा चढ़ा हुआ है। ये एक लाख रुपये लो और कर्जा चुका दो। शेष पचास हजारसे तेलका व्यापार शुरू कर दो। सुना है, इस समय तेलके व्यापारमें अच्छी आमदनी हो सकती है। आवश्यकतानुसार व्यापारमें मुझसे भी सलाह-मशविरा लेते रहना।'

रामगोपाल सेठजीके पैरोंपर गिर पड़ा और कहने लगा—'आप मनुष्य नहीं, देवता हैं। आपका यह उपकार मैं जीवन-पर्यन्त कभी नहीं भूलूँगा।'

रामगोपालने एक लाख रुपयोंमेंसे पचास हजार कर्जके चुका दिये, शेष रुपयोंसे तेलका व्यापार प्रारम्भ किया। व्यापारमें काफी लाभ हुआ।

शीघ्र ही उसने पूरे एक लाख रुपये सेठजीको लौटा दिये।

पुनः रामगोपाल सुखी-सम्पन्न हो गया। आज सेठ भगवानदयाल नहीं हैं, पर उनकी उदारता, सुहृदता, सद्-व्यवहारवृत्ति एवं परोपकार-परायणता अमर है।

कई अनाथालयों और आश्रमोंको उन्होंने पर्याप्त आर्थिक सहायता दी थी।

रामगोपालकी कर्मठता, पुरुषार्थ, धैर्य एवं साहस भी सराहनीय है।

सेठ भगवानदयाल—जैसे सात्त्विक एवं निःस्वार्थ व्यक्तियोंकी आज देश तथा समाजको बड़ी आवश्यकता है। ऐसे व्यक्तियोंमें देवत्वके दर्शन होते हैं। यह सच्ची घटना प्रेरणाका स्रोत है। हमें इससे शिक्षा ग्रहणकर जीवनमें सदाशयताको स्थान देना चाहिये।

—श्याममनोहर व्यास एम्० एस-सी०, बी० एड०
वरिष्ठ अध्यापक (विज्ञान-विभाग)

(२)

संत-हृदय

१९४० की घटना है।

सेवाग्राममें परचुरे शास्त्री नामक एक विद्वान् रहते थे। शास्त्रीजी कुष्ठ-रोगी थे। महात्माजी अपने हाथों उनकी सेवा करते, उनके मालिश करते, उनके घाव धोते और दवा लगाते।

एक दिन जब शास्त्रीजीके महात्माजी मालिश कर रहे थे, पण्डित सुन्दरलाल वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने कहा—'बापू! कोढ़की एक अच्छी दवा मैं जानता हूँ। एक जीवित काले साँपको पकड़कर उसे एक कोरी हाँडीमें भर दिया जाय और हाँड़ीको आगपर रखकर खूब तपाया जाय। जब साँप जलकर भस्म हो जाय और वह जो भस्म निकले उसे शहदमें मिलाकर शरीरपर चुपड़ दिया जाय तो कोढ़का बिल्कुल नाश हो जाता है।'

यह सुनकर महात्माजी कुछ मुसकराये। फिर उन्होंने शास्त्रीजीसे पूछा—'क्यों शास्त्रीजी! इस प्रयोगके लिये आप तैयार हैं?'

शास्त्रीजी कुछ देर चुप रहकर फिर गद्‌गद स्वरमें बोले—'बापू! साँपके बदले मुझे जला दिया जाय तो क्या नुकसान होगा? उस बेचारे साँपके क्या अपराध, जो मैं उसे जीते जलानेको तैयार होऊँ?'

इतना कहते-कहते शास्त्रीजीका गला भर आया। आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। कुछ देर इस स्थितिमें रहनेके बाद फिर विशेष गद्‌गद स्वरमें शास्त्रीजीने कहा—'पूर्वजन्ममें मैंने पाप किये होंगे, दूसरोंको सताया होगा, आज उसका परिणाम मैं भोग रहा हूँ। यदि इस जन्ममें मैं निर्दोष प्राणियोंको सताऊँगा तो अगले जन्ममें निश्चय ही मुझे अधिक दुःख भोगने पड़ेंगे। इससे तो यही अच्छा है कि ऐसा करनेके बदले मैं ही इस जन्ममें मर जाऊँ।'

पण्डित सुन्दरलाल इस विषादयुक्त वाणीको सुनकर बहुत पछताये। उनको लगा कि—मैंने इन दो महान् त्यागियोंके सामने अपनी व्यर्थकी बात रखनेकी भूल की थी। (अखण्ड आनन्द)

—दानशंकर डी० त्रिपाठी

(३)

हनुमान्‌बाहुकका चमत्कार तथा हनुमान्‌जीकी असीम कृपा

बात १ अप्रैल १९६७की है। मैं उस समय जिला-स्कूल सहरसामें पढ़ता था। उस दिन पहली घंटीमें ही व्यायाम था; इसलिये मैं अपनी साइकिल स्कूलकी दीवालके समीप रखकर व्यायाम करने चला गया। व्यायामकी घंटी पचास मिनटकी थी। जब व्यायाम करके सभी लड़कोंके साथ मैं अपने क्लासके समीप आया तो अपनी साइकिलको उस स्थानपर न देखकर स्तम्भित रह गया। फिर मैंने सोचा—आज पहली अप्रैलका दिन है और पहली अप्रैल मजाकका दिन होता है, इसलिये किसी साथीने मुझसे विनोद किया होगा। यह सोचकर मैं अपने क्लासमें पढ़नेके काममें लग गया तथा इधर-उधर साइकिलको भी स्कूलके अंदर ही खोजता रहा।

जब मुझे अन्तिम घंटीतक साइकिलकी कोई खबर नहीं मिल सकी, तब मेरे मनमें चिन्ता जगी; क्योंकि मजाक कुछ ही समयके लिये होता है, न कि पूरे दिनके लिये। मैंने प्राचार्य महोदय, व्यायामशिक्षक तथा वर्ग-शिक्षकके पास जाकर अपनी साइकिल चोरी होनेके विषयमें कहा। उन्होंने मेरी बातें सुननेके बाद कहा—'जब साइकिलमें ताला नहीं लगा था तो हम क्या कर सकते हैं। तुम यह नहीं समझते कि आजकल चोरोंकी कहीं भी कमी नहीं है।' फिर उन्होंने सान्त्वना भी दी—'खोज-बीन करो, साइकिल मिल जायगी।'

अब मैं अपनी ही गलतीपर पछता रहा था। मुझे स्कूलसे साइकिल चोरी जानेकी कल्पना भी नहीं थी और फिर पचास मिनटमें तो वापस लौट ही आना था। अब मुझे घर जाते भी डर लगता था कि मुझपर माता-पिताजी बिगड़ेंगे। यह सोचकर मैं स्कूलमें ही कुछ समयके लिये बैठ गया, चिन्तासे मन भरा था।

अकस्मात् मुझे इसी अवस्थामें एक साथीकी याद आयी और मैंने सोचा कि अभी घर न जाकर उसीके यहाँ चला जाय। यह सोचकर मैं अपने साथी (जिसका नाम कृष्णानन्द था) के यहाँ गया और मैंने उसे पुकारा। उसने जब मुझे उदास देखा तो उदासीका कारण पूछा। मैंने उसे उदासीका कारण बताया तो उसने कहा—'मैंने तुम्हारी साइकिल किसीको ले जाते स्पष्ट तो नहीं देखा, किंतु मुझे व्यायामकी घंटीके समय ऐसा लगा कि एक लड़का (जिसे मैं नहीं पहचानता हूँ) तुम्हारी ही साइकिलके-जैसी साइकिल लिये जा रहा है। तुम अभी ही बाजार चले जाओ तो शायद उसे पकड़ सको।'

मुझे उसकी बातें सुनकर कुछ शान्ति मिली और मैं बाजारकी ओर लपका। लेकिन बाजारमें वह थोड़े ही मिलनेवाला था। मैं उदासमन घर लौटा। संयोगसे केवल मेरे मामा साहब ही घरपर थे। बाबूजी कचहरीसे नहीं आये थे और माँ घर चली गयी थी। इसलिये कुछ क्षणके लिये बिगड़नेका भय जाता रहा। मैंने मामा साहबसे सारी बातें कहीं। उन्होंने भी मेरे साथ इधर-उधर खोज-बीन की; किंतु कहीं कोई पता नहीं लगा। आखिर उन्होंने थाना जाकर साइकिल चोरी होनेकी रिपोर्ट (Report) लिखा दी।

शामको बाबूजी आये। उनसे मामा साहबने सारी बातें कह दीं। बाबूजी बोले—'इसमें भय-चिन्ताकी क्या बात है, साइकिल खो गयी तो खो गयी। फिर नयी साइकिल आ जायगी।' मैं जितना बिगड़नेके डरसे उनसे कुछ भी न कह रहा था, उतना ही उनकी बातोंको सुनकर मुझे अति आश्चर्य हुआ। दो-ढाई सौ रुपयेकी साइकिल खो जानेपर भी उनका मुख जरा-सा भी मलिन नहीं हुआ। यह पिताजीकी महानता नहीं तो और क्या है?

फिर भी जब उन्होंने मेरे मुखपरसे चिन्ताकी रेखाको न हटते देखा, तो कह दिया—'अच्छा, कलसे तुम पाँच दिनोंतक हनुमान्‌बाहुकका पाठ करो। तुम्हें अपने-आप साइकिल मिल जायगी।' मैं हनुमान्‌बाहुकका पाठ तो पहलेसे भी करता था। लेकिन मेरी दृष्टिमें हनुमान्‌बाहुकका कोई खास महत्त्व न था।

मैंने पिताजीके आज्ञानुसार दूसरे दिनसे हनुमान्‌बाहुकका पाठ करना शुरू कर दिया। मेरे पाठ करनेका कोई नियम नहीं था। मैं यों ही अगरबत्ती जलाकर हनुमान्-बाहुक पूरा पढ़ लेता था और अन्तमें कहता था—'हे महावीर हनुमान्‌जी! आप सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सभी गुणोंसे पूरित तथा श्रीरघुनाथजीके अति दुलारे हैं। आपके बिना यह सृष्टि असत् है, अतः आपसे मेरा यही निवेदन

है कि आप मेरी साइकिल, चाहे वह जहाँ कहीं भी हो, मिला दीजिये। इसके लिये जो मैं आपको कष्ट दे रहा हूँ, उसे मुझको दीन जानकर क्षमा कीजिये, क्योंकि—

कहिँउँ बचन सब स्वारथ हेतू। रहत न आरत के चित चेतू॥

यों कहकर मैं हनुमान्बाहुकका पाठ करता था। आपको आश्चर्य होगा कि ठीक पाचवें दिन या यों कहिये कि हनुमान्बाहुक शुरू करनेके चौथे दिन ही मेरी साइकिल अपने-आप मिल गयी। वह किस्सा यों है—मेरी साइकिल एक मुस्लिम लड़का ले गया था तथा उसने उसे बहुत दूरके गाँवमें ले जाकर साइकिलपरसे मेरा नाम किसी प्रकार रगड़कर उड़ा दिया था और वहाँ वह उसे बेचना चाहता था। इधर उस चोर लड़केके नानाको मेरी साइकिल चोरी होनेके विषयमें पता चल गया था। क्योंकि वह पिताजीका मौकिर था। पिताजीने उसके सामने एक दिन यों ही यह घटना सुना दी थी। यह थोड़े ही मालूम था कि उसीका नाती साइकिल चुरा ले गया है।

संयोगसे वह अपनी लड़कीके ससुराल गया, वहाँ उसने साइकिल देखी तथा नाम रगड़ा हुआ देखकर उसे संदेह हुआ। उसे पता लग गया कि यह साइकिल चुराकर लायी गयी है। वह वहाँ जरा भी रुका नहीं और साइकिल लेकर पहुँचा। वह साइकिल लेकर आ ही रहा था कि पिताजीके स्टाम्प-वेंडरने उसे देखा और उसने मेरी साइकिलको पहचान लिया। उसने मुझको तथा पिताजीको खबर दी। मैंने और पिताजीने वहाँ पहुँचकर देखा तो वह मेरी ही साइकिल थी। उस मुसलमान सज्जनने सारी बातें बतायीं।

पर अब वह साइकिल देनेसे डर रहा था। उसने कहा—'आपने थाना वगैरहमें रिपोर्ट लिखायी है तथा स्कूलमें शिकायत की है, उन सबको हटा दीजिये, तब मैं साइकिल दूँगा।' पिताजीने कहा—'मैं आपको वचन देता हूँ कि मैंने जो केस वगैरह लिखाये हैं, सब मैं उठवा दूँगा। आपपर जरा भी आँच न आने दूँगा।' आखिर उसने साइकिल डरते-डरते दे दी।

अब हमलोगोंका धर्म था कि थानामें केस उठवा दें। पिताजी वचन दे चुके थे। थानेदार कैसे स्वभावके होते हैं, यह तो सब जानते ही हैं। थानेदारने कहा कि 'उसको पकड़वा दीजिये। मैं उसे पकड़कर ही आपकी कुछ सुनूँगा। नहीं तो कम-से-कम उसका नाम-पता ही बता दीजिये। और यदि आप मेरी बात मानकर ऐसा न करेंगे तो उलटा केस आपपर चलेगा।' अब हमलोग विचारमें पड़े कि क्या करें। पिताजीने वचन न दिया होता तो दूसरी बात थी। आखिर मैं एस्० पी० आफिस गया। वहाँ एक परिचित सज्जन थे। उन्होंने थाना फोन किया, किसी प्रकार तीसरे दिन थानेसे केस उठ गया।

यह सब हनुमान्बाहुक तथा हनुमान्जीकी ही कृपासे हुआ। हनुमान्बाहुकके प्रभावसे ही अपने-आप साइकिल आ गयी, जिसका कोई पता ही नहीं था। यह आश्चर्य नहीं तो और क्या है। मैं अपने अनुभवके अनुसार कहता हूँ कि कोई भी कठिन-से-कठिन कार्य हनुमान्बाहुकके पाठसे अवश्य आसान हो जाता है।

बोलो हनुमान्जी तथा हनुमान्बाहुककी जय !

—रवीन्द्रप्रसाद अम्बस्त

(४)

जिलाधीशकी आदर्श मानवता

घटना इस प्रकार है—एक व्यापारी अपने परिवारसहित मोटरद्वारा कलकत्तेसे सरदारशहर जा रहे थे। मार्गकी उन्हें पूरी जानकारी नहीं थी। अतः उनकी मोटर एक जगह बालूमें फँस गयी। उन्होंने पास ही स्थित एक बंगलेमें जाकर सहायताके लिये पुकारा, किंतु वहाँ उपस्थित सिपाहीने इन्कार कर दिया और कहा—'भाग जाओ, यह जिलाधीशका बंगला है।'

निराश व्यापारी लौटने लगे। इसी बीच, अंदरसे हाफ पेन्ट पहिने एक व्यक्ति निकला और उनके साथ सहायताके लिये चल पड़ा और वहाँ जाकर फँसी मोटरको निकालने लगा। तुरंत ही दो सिपाही और उसके पीछे दौड़े आये और उन्होंने भी उन सबका साथ दिया।

बादमें जब उक्त व्यापारीको पता चला कि वह व्यक्ति, जिसने उसकी मोटरको धक्के लगाकर निकालनेमें सहायता की थी, वे चूरूके जिलाधीश श्रीजी. रामचन्द्र थे तो उन्होंने उनसे काफी क्षमा-याचना की। पर जिलाधीशने कहा, 'यह तो मानवताके नाते उनका कर्तव्य था।' धन्य !

—एक जानकार

(५)

गुणका आदर

हमारे एक स्नेही भावनगर राज्यके एडमिनिस्ट्रेटर प्रसिद्ध सर प्रभाशंकर पट्टणीके व्यक्तिगत सचिवका काम करते थे। उनके लिये लीला-बंगलेमें एक छोलदारी लगा दी गयी थी, जिसमें टाइपराइटर, टेलीफोन, टेबलफैन, लाइट आदिकी सारी सुविधाएँ सुव्यवस्थित थीं। पट्टणीसाहेबको जब काम होता, वे ताली बजाते और ये तुरंत ही छोलदारी-मेंसे निकलकर उनके पास जा पहुँचते और काम समझकर लौट आते तथा उसको पूरा करनेके बाद ही आरामसे बैठते। एक दिन रातको नौ बजे साथ बैठे हुए हमलोग बातें कर रहे थे, इतनेमें तालीकी आवाज सुनायी दी और ये उन्हीं कपड़ोंमें पट्टणीसाहेबके पास जा पहुँचे। कुछ देरके बाद कागजका एक बड़ा पाकेट हाथमें लिये लौटे। मुझसे बोले—'तेरे सोनेका समय हो गया है, अतः सो जा, मुझे तो जूनागढ़के वजीर महमद भाईको एक बहुत जरूरी कागज अभी टाइप करके, खूब सबेरे घुड़सवारके साथ स्टेशन पहुँचाना है और एक विश्वासपात्र व्यक्तिके हाथ उसे महमदभाईके पास हाथों-हाथ पहुँचाना है। इसलिये मुझको देर लगेगी।'

मैं पासके पलंगपर सो गया। ये टाइप करने बैठे। टाइपराइटरकी खटखट आवाजसे मेरी नींद टूट जाती, मैं जगकर रोशनी जलती देखकर फिर आँख मूँदकर सो जाता। इन्होंने पिछली राततक लंबा पत्र टाइप करके, खूब सबेरे ही पट्टणीसाहेबके उसपर हस्ताक्षर कराके घुड़सवारके साथ स्टेशन भेज दिया और संदेशवाहकको टेलीफोनके द्वारा इसकी खबर दे दी। तदनन्तर कुछ देर आराम किया, इतनेमें सबेरा हो गया।

संध्याको मैं इनसे मिला तो इन्होंने मुझे एक कीमती जेबघड़ी दिखाकर कहा—'बाबूजी (पट्टणीसाहेब) ने मुझको यह भेटमें दी है।' मैंने पूछा—'कैसे?' तो उन्होंने बताया कि बाबूजीने मुझको बुलाकर पूछा—'मास्टर! महमदभाईका पत्र टाइप पूरा हुआ, उस समय कितने बजे थे? मैंने पिछली राततक रोशनी जलते देखी थी।' मैंने कहा—'बाबूजी, मेरी ऐसी प्रकृति है कि जबतक काम पूरा न हो जाय, तबतक कुरसीसे उठना नहीं?' इसपर पट्टणी-साहेबने कहा—'तब तो किस कामको पूरा करते कितना समय लगा, इसे जाननेके लिये लो, यह घड़ी मैं तुमको भेट दे रहा हूँ।' यों कहकर उन्होंने चेनसमेत घड़ी मुझको दे दी।' ('अखण्ड आनन्द') मास्टर छोटालाल भट्ट

(६)

दरिद्र-नारायण

२३ अगस्तको मैंने अपनी फैक्ट्रीमें, जहाँ मैं काम करता हूँ, कुछ फैक्ट्रीकी चीजें खो दीं। कारण यह था कि संध्याको मैं उन चीजोंको रोजकी तरह स्टोरमें जमा कराना भूल गया। अगले दिन सारी फैक्ट्रीमें तलाश करनेपर भी खोया हुआ सामान नहीं मिला।

मालिकोंको पता तो चल गया कि इस तरहसे चीजें खो गयीं हैं परंतु दयालु होनेके कारण उन्होंने कुछ भी नहीं कहा। यह उनकी उदारता थी। मुझसे रहा नहीं गया और मैं बहुत दुखी हो गया। अगला रविवार २५ तारीखका दिन भी बड़ी परेशानीमें गुजरा। फिक्रके मारे मेरी हालत खराब थी।

२६ अगस्त सोमवारको मैं अपने आफिस (फैक्ट्री) को जा रहा था कि मैंने देखा एक माँ अपने बच्चेको गोदमें लिये सड़कपर भूखी पड़ी है। मुझे दुःख तो हुआ ही था, मनमें करुणा आयी और कुछ भोजन मैंने उनको दे दिया। थोड़ा आगे बढ़ा तो एक व्यक्ति इन दो प्राणियोंसे भी अधिक भूखा मालूम पड़ रहा था, मैंने बचा हुआ भोजन उसे दे दिया। यह भोजन वैसे था ही कितना। अपने खाने भरके लिये ही मैं इसे लाया था।

फैक्ट्री पहुँचा। पहुँचनेके लगभग आधे घंटे पश्चात् मेरे द्वारा खोया हुआ सारा सामान अपने-आप मिल गया और मैं सुखी हो गया। ध्यान रहे कि सामान मिलनेकी जरा भी उम्मीद नहीं थी और वैसे भी वह बहुत कीमती था। इतना धन मेरे पास नहीं था कि मैं उसकी क्षतिपूर्ति कर सकता। घटनाका तात्पर्य यही है कि जितने भी गरीब भिखारी वर्गके व्यक्ति आजकल दीखते हैं, भगवान्‌के ही मूर्तरूप हैं। कलियुगमें ही भगवान् दरिद्र-नारायण कहे जाते हैं। हमें अवश्य इनके प्रति दयाका बर्ताव करना चाहिये। हमारा तथा समाजका कल्याण तभी हो सकता है जबकि हम सभी लोग दरिद्रोंमें भगवान्‌को देखें और— —लक्ष्मीदत्त

श्रीहरिः

गीता-दैनन्दिनी सन् १९६९ ई०

आकार २२×२९ बत्तीस पेजी, पृष्ठ ४१६, मूल्य साधारण जिल्द ७५ पै०, हाथकर्घेके कपड़ेकी जिल्द ९० पै०, डाकखर्च ९० पै० अलग। संस्करण १,५०,००० (डेढ़ लाख) प्रतियाँ।

इसमें हिंदी, अंग्रेजी, पंजाबी और नये भारतीय शक-संवत्‌की तिथियोंसहित पूरे वर्षमें दैनिक क्रमसे सम्पूर्ण श्रीमद्भगवद्गीता, तिथि, वार, घड़ी और नक्षत्रका संक्षिप्त पत्रक, अंग्रेजी तारीखोंका वार्षिक केलेण्डर, विनय, जीवनका सदुपयोग, प्रेमी-प्रीतम राम हैं, राग रामसे जोड़, कोटिं त्यक्त्वा हरिं स्मरेत्, चाहता जो परम सुख तू, याद कर हरिनामका, अपने कर्मोंको भगवान्‌के अर्पण कर दें, सबके साथ मङ्गल-व्यवहार करें आदि, सदुपदेश; कुछ जानने योग्य उपयोगी बातें—जैसे रेलभाड़ा, डाक, तार, इन्कमटैक्स, मृत्युकर, माप-तौलकी नयी मेट्रिक प्रणाली, उनका तुलनात्मक परिवर्तन, कागजका माप, दैनिक वेतन और मकान-भाड़ा चुकानेका नकशा; अनुभूत घरेलू दवाओंके प्रयोग, स्वास्थ्यरक्षाके सप्तसूत्र, ध्यान और आरती भी दी गयी है।

☞ गीता-दैनन्दिनीके विक्रेताओंको विशेष रियायत मिलती है। अतः यहाँ आर्डर देनेसे पहले अपने यहाँके पुस्तक-विक्रेतासे माँगिये। इससे आपके समय तथा भारी डाकखर्चकी बचत हो सकती है।

व्रजके पवित्र मधुर भावकी दो पुस्तकें प्रकाशित हो गयीं!

श्रीव्रज-रस-माधुरी

आकार २०×३० सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या २७५, मूल्य ०.७० पैसे, डाकखर्च ०.९५।

'श्रीव्रज-रस-माधुरी' पुस्तकमें एक अधिकारी महानुभावके भगवान् श्रीराधा-माधवके दिव्य स्वरूप-सौन्दर्य-माधुर्य, स्वभाव एवं लीला-सम्बन्धी, आदर्श त्यागमयी प्रेम-साधनामें सहायक २५१ पदोंका संग्रह है। व्रजरसकी किसी रूपमें अनुभूति या उपलब्धि प्राप्त होनेपर भी स्वतःसुखाय रचित ये पद त्यागपूर्ण पवित्र भगवत्प्रेमकी साधनामें प्रवृत्ति और सहायता प्रदान करनेमें विशेष सक्षम हैं। श्रीराधामाधवके उपासकोंको इनसे अवश्य लाभ उठाना चाहिये।

श्रीराधा-जन्माष्टमी-व्रत-महोत्सव

आकार २०×३० सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या ७२, मूल्य ०.३० पैसे, डाकखर्च ०.८०।

इस पुस्तिकामें भगवान् श्रीकृष्णके विशुद्धतम प्रेमकी अद्वितीय घनीभूत नित्यप्रतिमा श्रीराधाजीके सम्बन्धमें प्राचीन ग्रन्थोंके आधारपर उनकी ऐतिहासिकता एवं उनके स्वरूप, महत्त्व और प्राकट्यके काल-तिथि, वार, समय आदिके परिचयके साथ-साथ श्रीराधा-जन्म-महोत्सवकी महिमा तथा पूजा-विधि आदिका संकलन एवं प्रतिपादन बड़े ही सुन्दर प्रामाणिक ढंगसे प्रस्तुत किया गया है। भगवती श्रीराधाके उपासक तथा सर्वसाधारण व्यक्ति इसमें वर्णित श्रीराधाके महत्त्वको जानकर, मानकर और तदनुसार पूजा आदिका श्रद्धासहित सत्प्रयास करके श्रीराधाजी एवं उनके प्राणवल्लभ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी अमोघ कृपा सहजमें ही प्राप्त कर सकते हैं। पुस्तक मननीय एवं संग्रहणीय है। इस विषयका इतना तथ्यपूर्ण संकलन संभवतः यही सबसे पहले प्रकाशित हो रहा है।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

सम्मान्य एवं प्रेमी ग्राहकों और पाठकोंको सूचना तथा निवेदन

(१) 'कल्याण'का यह ४२वें वर्षका दसवाँ अङ्क है। इस वर्षका ग्यारहवाँ और बारहवाँ—ये दो अङ्क निकलने शेष हैं। ४३वें वर्षका प्रथम अङ्क 'परलोक और पुनर्जन्माङ्क' नामक विशेषाङ्क होगा, इसमें 'परलोक तथा पुनर्जन्म' सम्बन्धी बहुत महत्त्वपूर्ण सामग्री रहेगी, जिसकी आजकी बढ़ती हुई नास्तिकताके प्रवाहको रोकनेके लिये बड़ी आवश्यकता है। इसमें रंगीन तथा सादे सुन्दर चित्र भी रहेंगे।

(२) इस वर्ष खर्च और भी बढ़ जानेपर भी कल्याणका वार्षिक मूल्य केवल ९ (नौ) रुपया रक्खा गया है, जो वास्तवमें बहुत कम है। अतः आप वार्षिक मूल्य मनीआर्डरके द्वारा तुरंत भेजकर ग्राहक बन जाइये। रुपये भेजते समय मनीआर्डरमें अपना नाम, पता, ग्राम या मुहल्ला, डाकघर, जिला, प्रदेश आदि साफ-साफ अक्षरोंमें लिखनेकी कृपा करें। ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखें। नये ग्राहक हों तो 'नया ग्राहक' लिखना कृपया न भूलें।

(३) ग्राहक-संख्या न लिखनेसे आपका शुभ नाम नये ग्राहकोंमें लिखा जा सकता है। इससे विशेषाङ्ककी एक प्रति नये नम्बरोंसे तथा एक प्रति पुराने नम्बरोंसे भी वी० पी० द्वारा जा सकती है। यह भी सम्भव है कि आप उधरसे रुपये कुछ देरसे भेजें और पहले ही यहाँसे आपके नाम वी० पी० चली जाय। दोनों स्थितियोंमें आप कृपापूर्वक वी० पी० वापस न लौटाकर नये ग्राहक अवश्य बना दें और उनका नाम-पता साफ-साफ लिखनेकी कृपा करें। सभी ग्राहक-पाठक महानुभावोंसे तथा पाठिका-ग्राहिका देवियोंसे यह भी निवेदन है कि वे प्रयत्न करके 'कल्याण' के दो-दो नये ग्राहक बनाकर उनसे रुपये मनीआर्डर द्वारा शीघ्र भेजवानेकी कृपा करें। इससे भगवान्की सेवा होगी।

(४) जिन पुराने ग्राहकोंको किसी कारणवश ग्राहक न रहना हो, वे कृपापूर्वक एक कार्ड लिखकर अवश्य सूचना दे दें, जिससे व्यर्थ 'कल्याण'-कार्यालयको हानि न सहनी पड़े।

(५) किसी कारणवश 'कल्याण' बंद हो जाय तो केवल विशेषाङ्क और उसके बादके जितने अङ्क पहुँच जायँ, उन्हींमें पूरे वर्षका मूल्य समाप्त हुआ समझ लेना चाहिये; क्योंकि अकेले विशेषाङ्कका ही मूल्य रु० ९ (नौ रुपये) है। सजिल्दका मूल्य रु० १०.५० है, पर वह बहुत देरसे मिल सकेगा।

(६) इस विशेषाङ्कके लिये अगस्त तक ही लेख माँगे गये थे, परन्तु अबतक लेख आ रहे हैं। लेख इतने अधिक आ गये हैं कि उन सबका प्रकाशित करना सर्वथा असंभव है। अब बिना माँगे कोई भी सज्जन लेख न भेजें। इस विवशताके लिये क्षमा-प्रार्थना है। व्यवस्थापक—'कल्याण,' पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)